ISSN 2455-0310

VOLUME 1, ISSUE 4
MARCH-APRIL 2016

TRANSFRAME

A Bilungual, Bimonthly e Magazine on Translation And Cinema

In this issue

- Articles on Language, Film, Translation
- Research Articles on Cinema and Language
- Personality : Film Director Rajkumar Hirani
- Creation : Photographs, Paintings and Poems
- Interview : Russian Faculty
- Film Reviews : Sanam Re & Sanam teri kasam

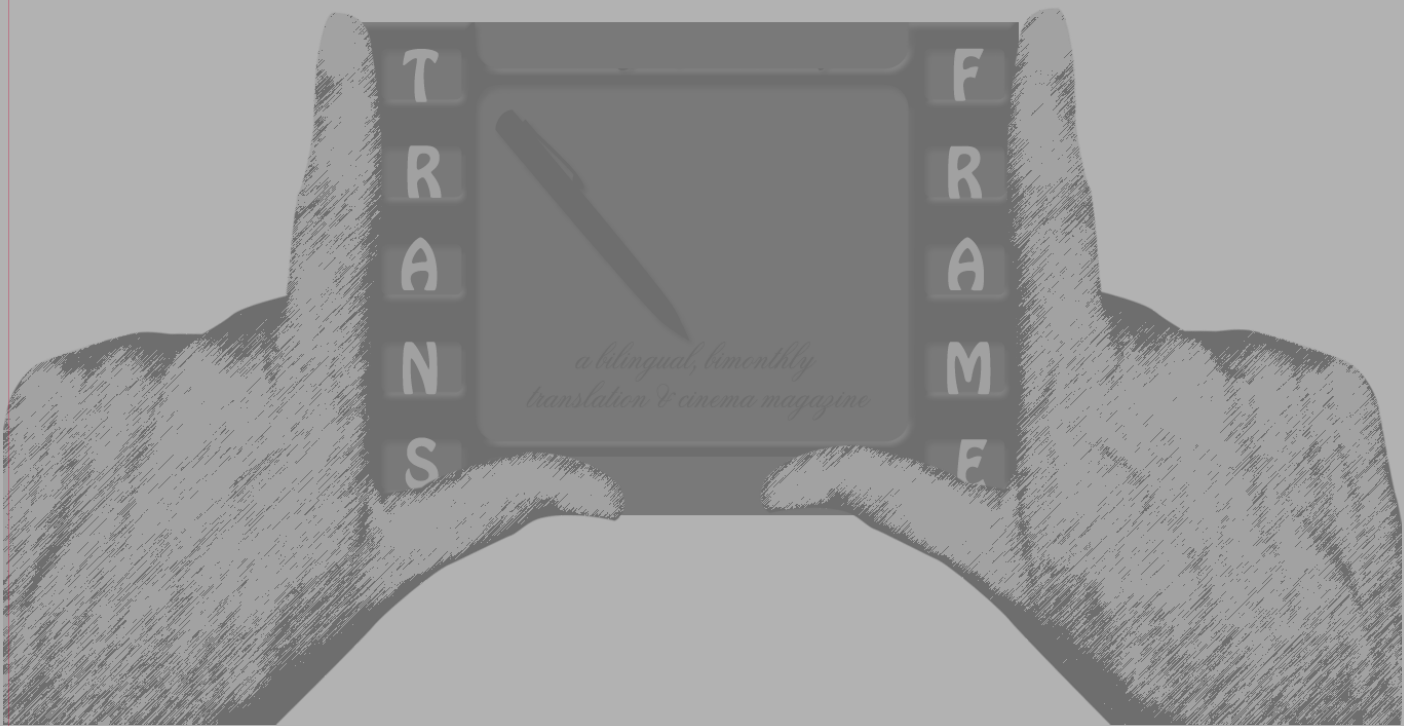

ISSN 2455-0310

TRANSFRAME

VOLUME 1, ISSUE 4

MARCH-APRIL 2016

इस अंक में

समाजभाषाविज्ञान : समाज, संस्कृति और भाषा का सहसंबंध : प्रफुल्ल भगवान मेश्राम 4

अनुवाद : वर्तमान स्थिति एवं चुनौतियाँ : सूर्या ई.वी. 9

हिंदी सिनेमा के सामाजिक सरोकार : आशीष कुमार 13

सिनेमा में दलित प्रश्न और 'फेंड्री' : मेघा 17

आलोचना: वर्तमान संदर्भ : देविन्दर सिंह 22

राज कुमार हिरानी : प्रमोद कुमार पाण्डेय 26

फ़िल्म - सनम तेरी कसम : रूद्रभानु प्रताप सिंह 33

दिल जुदा है 'लवशुदा' : रूद्रभानु प्रताप सिंह 35

TRANSLATION AS A BRIDGE IN THE 21ST CENTURY : Yugeshwar Sah 37

मानक हिंदी के लिए संज्ञा व्युत्पादक रूपिम जनरेटर : धीरेन्द्र यादव 44

कैमरा : राजदीप 50

लेखनी : प्रदीप त्रिपाठी 51

लेखनी : मेघा आचार्य 52

तुलिका : कुँवर रवींद्र 53

बातचीत : हिंदी भाषा की रूसी अध्यापिका इंदिरा जी के साथ : मेघा आचार्य 54

अस्वीकरण के कारण लुप्त या मृतप्राय शब्द तथा अभिव्यक्तियां : एक अध्ययन
तारिक खान, पंचानन मोहंती ए.एल.टी.एस. केंद्र, हैदराबाद विश्वविद्यालय:
अनुवादक सूर्या. ई. वी. 56

1857 और तेलगु नवजागरण: डॉ. अन्नपूर्णा सी. 63

खोरठा भाषा की क्रिया का रूपवैज्ञानिक अध्ययन : शिल्पा 66

आदिवासी भाषा का विकास एवं जीवन-दर्शन : मनोज कुमार साव 74

द रुल ऑफ़ थर्ड्स: प्रवीण सिंह चौहान 77

ISSN 2455-0310

EDITOR

MEGHA & PRAVEEN

अपनी बात...

'ट्रांसफ्रेम' मार्च-अप्रैल 2016 का चौथा अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है.....

'भारत कुमार' के नाम से प्रसिद्ध सिने-अभिनेता व निर्देशक मनोज कुमार जी को भारतीय सिनेमा का सर्वोच्य सम्मान 'दादा साहब फाल्के" पुरस्कार के लिए चुना गया है। 1957 से 1994 के मध्य चित्रपट की दुनियां में सक्रिय रहने वाले मनोज कुमार यह सम्मान पाने वाले 47वे व्यक्ति हैं। इन्हें 1992 में सिनेमा के क्षेत्र में योगदान के लिए पद्मश्री से सम्मानित किया जा चुका है। ट्रांसफ्रेम परिवार की ओर से मनोज कुमार जी को अभिनंदन।

'ट्रांसफ्रेम परिवार' में निरंतर नए जुड़ते जा रहें सदस्यों का परिवार में स्वागत है। ट्रांसफ्रेम को पाठकों से मिल रही प्रतिक्रियाओं के हम आभारी हैं। हमें विश्वास है कि, हम सबके सम्मिलित प्रयास से यह ई-पत्रिका एक नई पहचान बनायेगी...

संपादक

©All Rights Reserved

ट्रांसफ्रेम में प्रकाशित रचनाओं के साथ संपादक की सहमति होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होंगे।

ISSN 2455-0310

अध्ययन

समाजभाषाविज्ञान : समाज, संस्कृति और भाषा का सहसंबंध

हर समाज के पास अपनी संस्कृति और भाषा होती है जिससे उस समाज की पहचान जुड़ी होती है। इस आलेख में समाजभाषाविज्ञान, समाज, संस्कृति और भाषा के सहसंबंध को स्पष्ट किया गया है।

प्रफुल्ल भगवान मेश्राम
शोधार्थी - पी-एच.डी. हिंदी (भाषा प्रौद्योगिकी)
भाषा प्रौद्योगिकी विभाग, भाषा विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि. वर्धा, महाराष्ट्र
email-id-pmeshram87@gmail.com
Mobile No. 09922694337

भाषा विचारों को अभिव्यक्त करने का, सोचने का, चिंतन करने का सबसे प्रभावी माध्यम है जिसका अध्ययन भाषाविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। समाजविज्ञान और भाषाविज्ञान इन दोनों अध्ययन विषयों से समाजभाषाविज्ञान के रूप में एक अंतरानुशासनिक ज्ञान की शाखा का निर्माण हुआ है। भाषा का अध्ययन जब समाज के परिप्रेक्ष्य में किया जाए तो वह अध्ययन समाजभाषाविज्ञान के अंतर्गत आता है। एक ही भाषा का प्रयोग उस भाषा का प्रयोगकर्ता अलग-अलग संदर्भों में भिन्न-भिन्न रूप से करता है। उदाहरण के लिए- यदि कोई व्यक्ति अपने दोस्तों से या उम्र में समान व्यक्ति से बात करें तो 'तू' और 'तुम' सर्वनाम का प्रयोग करता है। परंतु यदि उससे बड़ों से या अपरिचित व्यक्तियों से बात करें तो 'आप' सर्वनाम का प्रयोग करता है। समाजभाषाविज्ञान का उद्देश्य भाषा और समाज के सहसंबंध का अध्ययन करना है जिसके अंतर्गत समाज का भाषा पर प्रभाव, भाषा किस प्रकार समाज को बांधती है? समाज में एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग हो तो उस समाज की भाषाई संरचना कैसे होगी? आदि का अध्ययन करना है। हर समाज के पास अपनी संस्कृति और भाषा होती है जिससे उस समाज की पहचान जुड़ी होती है। इस आलेख में समाजभाषाविज्ञान, समाज, संस्कृति और भाषा के सहसंबंध को स्पष्ट किया गया है।

समाजभाषाविज्ञान (Sociolinguistics)

भाषाविज्ञान का ऐतिहासिक अध्ययन करें तो यह दिखाई देता है कि, भाषा की संरचना का विश्लेषण पर अधिकतम बल है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि, भाषा की विविधता को नकारा गया है। "सस्यूर ने (1914) भाषा के दो पक्ष **लांग** (Langue) एवं **पारोल** (Parole) की बात की। लांग का संबंध भाषा-व्यवस्था से है जो वक्ता के मस्तिष्क में विद्यमान रहती है। परोल का संबंध भाषा-व्यवहार से है। लांग का संबंध भाषा व्यवस्था से होने के कारण वह हर व्यक्ति के मस्तिष्क में समरूपी (Homogeneous) या एक जैसी होती है। विविध संदर्भों में विभिन्न व्यक्ति एक ही भाषा के विविध रूपों का प्रयोग करने के कारण परोल विषमरूपी (Heterogeneous) होता है।" "चोम्स्की ने भी इसी प्रकार से भाषा के दो पक्षों की बात की। लांग को उन्होंने 'भाषिक क्षमता' (Language Competence) कहा तो परोल को उन्होंने भाषिक व्यवहार (Language Performance) का नाम दिया।" भाषिक क्षमता मनुष्य के मस्तिष्क में वह भाषायी ज्ञान है जिसकी सहायता से वह भाषा बोल और समझ सकता है। भाषिक व्यवहार इस अंतर्निहित ज्ञान के वास्तविक प्रयोग से संबंधित है। भाषिक क्षमता का स्वरूप मानसिक होने के कारण अमूर्त होता जबकि भाषिक व्यवहार भौतिक होने के कारण मूर्त होता है। चोम्स्की के भाषायी ज्ञान का केंद्रबिंदु इस सार्वभौमिक भाषायी ज्ञान का विश्लेषण है। वे भाषिक व्यवहार को भाषायी क्षमता तक पहुंचने का एक साधन मात्र मानते हैं।

अमेरिकन संरचनावाद के समय ही विद्वानों को उसमें कमियां नजर आने लगी थी। संरचनावादी विद्वान प्रत्यक्ष भाषिक व्यवहार से सामग्री संकलित करते थे। संकलित की गई सामग्री से व्यक्तिसापेक्ष गुणों को निकालकर, उसका संदर्भ मुक्त, व्यक्ति निरपेक्ष, स्थिर और आदर्श रूप का वर्णन करते रहें। चोम्स्की ने भी भाषा के आदर्श रूप के वर्णन, अध्ययन की बात की। उन्होंने इस दृष्टि से प्रत्यक्ष भाषिक व्यवहार की उपेक्षा ही की। भाषा के सामाजिक संदर्भों की तरफ उन्होंने ध्यान नहीं दिया। भाषा का वर्णन प्रत्यक्ष भाषिक व्यवहार का ही होना चाहिए ऐसा मत मैलीनोव्हस्की ने पहले ही व्यक्त किया था। फर्थ ने भी भाषा के सामाजिक संदर्भों के विचार को ही महत्त्व दिया है। पर संरचनावाद के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण इसकी तरफ किसी का ध्यान ही नहीं गया। 1960 के बाद इसमें बदलाव आने लगा और भाषा के सामाजिक संदर्भों की तरफ भी ध्यान दिया जाने लगा जिससे भाषाविज्ञान की एक अनुप्रयुक्त शाखा के रूप में समाजभाषाविज्ञान का उदय हुआ।

प्रत्यक्ष व्यवहार में भाषा का प्रयोग करते समय उसका संबंध भाषा का प्रयोग करने वाले व्यक्ति, जिस समाज में उसका प्रयोग किया जाता है वह समाज और उस समाज की संस्कृति से आता है। इन तीनों के संदर्भ में भाषा का अध्ययन अलग-अलग प्रकार का होता है। इसके अनुरूप भाषाविज्ञान का मनोवैज्ञानिक भाषाविज्ञान, समाजभाषाविज्ञान और मानववंश भाषाविज्ञान जैसी स्वतंत्र शाखाओं का निर्माण हुआ है। इन शाखाओं के अध्ययन के लिए केवल भाषाविज्ञान की वर्णनात्मक पद्धति से ही कार्य नहीं किया जाता है बल्कि इसके अध्ययन के लिए उस क्षेत्र में कार्य करनेवाली अन्य अध्ययन शाखाओं की भी सहायता लेनी पड़ती है। समाज व्यक्ति-सापेक्ष होता है, संस्कृति समाज-सापेक्ष होती है पर अध्ययन पद्धति, अध्ययन क्षेत्र और अध्ययन का दृष्टिकोण इन तीन बातों के कारण इन तीनों शाखाओं को स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त हुआ है।

प्राग संप्रदाय का कहना है कि, समाजभाषाविज्ञान भाषाविज्ञान की एक शाखा होकर भाषाविज्ञान से इसे अलग रखने योग्य नहीं है। फिशमैन के अनुसार समाजविज्ञान और भाषाविज्ञान के परस्पर सहकार्य से बनी हुई समाजभाषाविज्ञान एक अंतरानुशासनिक अध्ययन पद्धति है।

समाजभाषाविज्ञान समाज में प्रयोग होने वाले भाषा भेदों का अध्ययन करता है। कोई भी समाज एक संघीय भाषा का प्रयोग नहीं करता बल्कि उसमें अनेक बोलियां रहती है। व्यावसायिक भेदों से निर्मित हुई बोलियां, स्त्री-पुरुष भेद से निर्मित बोलियां, छोटे बच्चों एवं वयस्क प्रौढ़ व्यक्तियों की बोली, वर्णभेद से निर्मित हुई बोली, इस प्रकार से बोलियों के अनेक प्रकार किए जा सकते हैं। एक भाषा के क्षेत्र में मिलनेवाली बोलियों के इन प्रकारों के अलावा अन्य भाषाओं के संपर्क में आने से भी निर्मित हुए संमिश्र भाषा प्रकार भी प्राप्त होते हैं।

जिस तरह से समाज एक रूप नहीं रहता उस तरह व्यक्ति की भाषा भी एक रूप नहीं रहती। व्यक्ति समाज के महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में अलग-अलग भूमिकाएं निभाता है। उसका संबंध अलग-अलग रिश्तों से होता है। अनेक समाज मिलकर राष्ट्र का निर्माण करतें है जिसमें अनेक भाषाएं प्राप्त होती है। अलग-अलग स्तर पर इन सभी बोलियों व भाषाभेदों का समाजभाषाविज्ञान में अध्ययन किया जाता है।

संरचनावादी अध्ययन पद्धति से भाषा और बोली का अध्ययन करते समय जिस सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग किया जाता है उसकी आवश्यकता इसमें नहीं पड़ती। विशिष्ट बोलियों का अध्ययन करते समय भाषा भेदों की तरफ ध्यान देने की आवश्यकता न होने के कारण एक या दो निवेदकों की सहायता से भाषिक सामग्री संकलित की जाती है। इस सामग्री की सहायता से भाषा का एक स्थिर, आदर्श मानक व्याकरण निर्माण किया जाता है जिसके लिए संकलित की गई प्रत्यक्ष उच्चरित सामग्री को गौण ठहराकर उसके पीछे के आदर्श, अमूर्त व्याकरण पद्धति को खोज कर निकालना इस प्रकार के अध्ययन का वैशिष्ट्य होता है। किंतु

समाजभाषाविज्ञान के अध्ययनकर्ता को भाषा भेदों की पहचान/दखल के लिए एक या दो व्यक्ति को निवेदक के रूप में लेकर उसका कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। संपूर्ण समाज उसका निवेदक होता है। एक बोली के अध्ययन में निवेदकों को प्रश्नावली देकर सूचना एकत्रित कर सकते हैं। समाजभाषाविज्ञान में प्रत्यक्ष भाषिक व्यवहार का अध्ययन करने का कारण प्रश्नावली से काम नहीं चल सकता। यहां पर अध्ययनकर्ता समाज के विभिन्न क्षेत्रों में घूमकर भिन्न-भिन्न संदर्भों से संबंधित प्रत्यक्ष भाषिक व्यवहार को अध्ययन के लिए लेता है। एक व्यक्ति के कृत्रिम पद्धति से लिए गए साक्षात्कार के बजाए विविध भाषा भेदों के प्रत्यक्ष स्वाभाविक स्वरूप लेने पर उसका बल रहता है। बोली पर अध्ययन करने वाले अध्ययनकर्ता का बल शब्दों पर रहता है जिससे सामग्री एकत्रित की जाती है। समाजभाषावैज्ञानिक समाज का प्रतिनिधित्व होगा इस तरह से समाज के विविध स्तरों पर रहने वाले व्यक्तियों का चयन करता है।

भाषा अध्ययन का यह क्षेत्र बहुत व्यापक होने के कारण इसके संबंध में जो संशोधन शुरू है उसमें विविधता दिखाई देती है। "संशोधन के रूप में स्थूल रूप से समाजभाषाविज्ञान का दो भागों में वर्गीकरण किया जाता है- 1. स्थूल समाजभाषाविज्ञान एवं 2. सूक्ष्म समाजभाषाविज्ञान।" जब शोध का विषय सीमित स्वरूप का होकर उसमें विशेषनाम का प्रयोग, सर्वनाम प्रयोग, रिश्तेवाचक शब्द, अभिनंदन प्रकार आदि का अध्ययन किया जाए तो उसे सूक्ष्म समाजभाषाविज्ञान एवं विषय जब व्यापक स्वरूप का होकर उसमें भाषा-बोली एवं समाज के प्रश्न जैसे- बहुभाषिकता, द्वैभाषिकता, भाषा नियोजन, भाषा संपर्क आदि का अध्ययन करे तो उसे स्थूल समाजभाषाविज्ञान कहा जाता है। समाज की अथवा राष्ट्र की भाषिक समस्याओं को पहचान कर उनका समाधान खोजने के लिए समाजभाषाविज्ञान का उपयोग होता है। इस दृष्टि से समाजभाषाविज्ञान ही मानव समाज के लिए ज्यादा नजदीक और उपयुक्त ज्ञान शाखा दिखाई देती है। मानव समाज का अध्ययन जितना गहन एवं व्यापक है उतना ही समाजभाषाविज्ञान का अध्ययन भी व्यापक है।

समाज-संस्कृति-भाषा सहसंबंध

मनुष्य इतर प्राणियों की तुलना में समाज का निर्माण करके रहता है इसलिए मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा गया है। इतर प्राणियों की तुलना में वह दूसरों पर निर्भर रहता है। स्वयं का अस्तित्व बचाकर रखने के साथ-साथ जीवन को सुलभता से व्यतीत करने के लिए वह सामाजिक संबंधों का जाल निर्मित करता है जिससे संस्कृति को आकार मिलता है। केवल लोगों का समूह समाज नहीं है। समूह के व्यक्तियों में विशिष्ट रूप से परस्पर संबंध रहते हैं जिसमें विशिष्ट प्रकार की अंतरक्रिया शुरू रहती है। व्यक्ति स्वयंपूर्ण नहीं रहता किंतु समाज स्वयंपूर्ण रहता है। व्यक्ति समाज पर निर्भर रहता है। समाज की अपनी संस्कृति होती है जिसमें समाज के सदस्यों में एकता की भावना होती है। समाज शब्द का प्रयोग हम अपने व्यवहार में बहुत सरलतम रूप से करते हैं पर समाज एक ऐसी संकल्पना है जो रहस्यमय और व्यापक है।

इस संकल्पना के संबंध में हरिश्चंद्र थोरात का कहना है कि, "समाज की संकल्पना के संदर्भ में विचार करें तो केवल मानव ही सामाजिक है ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि मानववंश शास्त्र के अनुसार जीवित रक्षण के लिए परस्पर संबंध की व्यवस्था के अर्थ में चीटियों, मक्खियों जैसे कीटकों में भी समाज व्यवस्था रहती है।" इसी विचार को विस्तार से प्रस्तुत करते समय उन्होंने कहा कि, "मनुष्य भी समाज में रहने वाला प्राणी है, पर चीटियों जैसी मूलप्रवृत्ति मानव में नहीं दिखाई देती। कीटकों में भी ये मूलप्रवृत्ति होती है और उनके मूलप्रवृत्ति का स्वरूप सर्वसाधारण नहीं होता। मनुष्य में मूलप्रवृत्ति की संख्या कम तो होती है लेकिन उनका स्वरूप सर्वसाधारण होने के कारण उनके आविष्कार की दिशा निश्चित नहीं रहती। मानव की इस विशिष्ट परिस्थिति के कारण और मनुष्य को उपलब्ध होने वाली क्षमताओं के कारण मनुष्य ने संस्कृति का निर्माण किया है। समाज के बिना संस्कृति अशक्य है।

संस्कृति मानव समाज का महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है।"

संस्कृति मानव समाज में चलने वाली एक व्यवस्था है। प्रत्येक मानव समाज की स्वयं की संस्कृति होती है। संस्कृति का स्वरूप समाज के अनुसार बदलता रहता है। अर्थात प्रत्येक समाज की संस्कृति समान नहीं होती। प्रत्येक समाज की जाति, धर्म, प्रदेश, बस्ती, व्यवसाय आदि के अनुसार संस्कृति का स्वरूप बदलता है जो दूसरे समाज की संस्कृति से भिन्न होता है। संस्कृति विशिष्ट समाज की विशिष्ट काल की जीवन पद्धति (Way of Life) होती है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की ओर संक्रमित होती है। ज्ञान, श्रद्धा, कौशल, कला, नीति, कल्पना, कानून, परंपरा आदि अभौतिक और घर, कपड़े, यंत्र, औज़ार, गहनें आदि भौतिक घटकों से मिलकर संस्कृति का निर्माण होता है। सभी घटकों के आधार पर सर्वसामान्य व्यक्ति किसी समाज की संस्कृति को श्रेष्ठ और कनिष्ठ ठहराता है। यद्यपि श्रेष्ठ-कनिष्ठ होने के संदर्भ में भाषा के जैसा संस्कृति के बारे में यह विचार भी अवैज्ञानिक दिखाई देता है।

भाषा और संस्कृति दोनों समाज में विद्यमान रहती है। समाज के अस्तित्व के लिए इनकी आवश्यकता होती है। युद्ध, स्थानांतरण, स्थलान्तर, विदेशी आक्रमण, परकीय वर्चस्व आदि कारणों से समाज में बदलाव होता रहता है। पर्यायी रूप से संस्कृति संक्रमण के साथ भाषा भी परिवर्तनीय रही है। मानव की बदलती हुई सुविधाओं, आवश्यकताओं के कारण दूसरी संस्कृति की भाषा का संपर्क दिनों-दिन बढ़ रहा है। इसलिए संपर्क में आने वाले समाज का प्रभाव भी सामाजिक जीवन के साथ-साथ भाषा पर भी पड़ता है। एक समाज में व्याप्त रूढ़ि परंपरा, प्रथा कुल उस समाज की संस्कृति का दर्शन उस समाज में बोली जाने वाली भाषा के माध्यम से प्राप्त होता है। इस कारण संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की ओर वहन होता है। जिस प्रकार से एक समाज की तरह एक भाषा नहीं होती उसी प्रकार एक ही संस्कृति भी नहीं रहती। उदाहरण के लिए- मराठी समाज की संस्कृति एक ही है ऐसा नहीं कह सकते। मराठी समाज की संस्कृति में भी भाषा जैसी विविधताएं मिलती है। भाषा और संस्कृति का निकटतम संबंध होता है। गालियां, अश्लील शब्दों का प्रयोग जिन व्यक्तियों की भाषा में मिलता है उनकी संस्कृति निम्न दर्जे की समझी जाती है। मराठी भाषी समाज में घर के बाहर जाते समय 'मी येतो'(मैं आता हूँ) कहा जाता है। जा के बदले 'ये' का प्रयोग होता है। 'बांगडया फुटल्या' किंवा 'कुंकु संपले' (चुड़ियां टूट गई या सिंदुर खतम हो गया) कहने के बजाए बांगडया वाढल्या (चुड़ियां बढ़ गयी), कुंकु वाढले (सिंदुर बढ़ गया) कहा जाता है। शिष्टाचार और अभिवादन का भाषा से निकटतम संबंध है। अहो, अजी, जी, हो जैसे आदरार्थी शब्द, सर, साहब, नमस्कार, नमस्ते, राम राम, जय भीम, जय सेवा, जैसे शब्द अभिवादन परक शब्द तो उच्च शिक्षित वर्ग में बोले जाने वाले Good Morning, Good Afternoon, Good Evening, Good Night, Hello, Hi, Bye आदि जैसे अंग्रेजी शब्द शिष्टाचार के साथ-साथ सामाजिक संदर्भ को भी दर्शाते है।

आर्थिक दृष्टि से सक्षम लोगों का अनुकरण सर्वसाधारण लोग करते हैं। उनकी भाषा, जीवन पद्धति आत्मसात करने का प्रयत्न करते हैं। किसी भी समाज की बोली भाषा प्रमाण भाषा बन सकती है, यह भाषावैज्ञानिक सत्य है। किंतु सामान्यतः आर्थिक दृष्टि से सक्षम रहने वाले समाज की बोली भाषा को ही प्रमाण भाषा का दर्जा प्राप्त होता हुआ दिखाई देता है। महाराष्ट्र में पुणेरी बोली को प्रमाण भाषा का दर्जा प्राप्त है क्योंकि आधुनिक काल में भारतीय राजनीति के सूत्र लोकमान्य तिलक के रूप में पुना से संचालित हो रहे थे। तात्पर्य भाषा के विकास में समाज का विकास महत्त्वपूर्ण होता है।

समाज के बिना भाषा का विचार नहीं किया जा सकता। भाषा व्यक्ति के जन्म से पहले ही समाज में विद्यमान रहती है। प्रत्येक बच्चा प्राकृतिक क्षमता के आधार पर भाषा को समाज से, परिवार से सीखता है। भाषा एक सामाजिक संस्था है जिस पर समाज का आधिपत्य रहता है। भाषा, समाज और संस्कृति का परस्पर संबंध स्पष्ट करने के लिए साहित्य का आधार लिया जाता

है। इस संदर्भ में दिगंबर पाध्ये ने कहा है “विविध भाषा और प्रदेशों में साहित्य की विभिन्नता, उसका वैशिष्ट्य का संबंध बहुतांश संस्कृति की भिन्नता के साथ होता है। पाश्चात्य साहित्य, भारतीय साहित्य का भेद करते समय सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को ही प्राधान्य दिया जाता है। इसलिए पाश्चात्य साहित्य के अनेक संस्कार लेकर भी मराठी साहित्य मराठी रहा है।” किंतु वर्तमान समय में ऐसा नहीं है। आज अनुवाद के माध्यम से हर भाषा का साहित्य दूसरी भाषाओं में अनूदित हो रहा है जिसके कारण एक समाज के लोग दूसरे समाज की संस्कृति से परिचित हो रहें हैं जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान भाषा का ही है।

स्वयं की संस्कृति और भाषा इन दोनों बातों का प्रत्येक समाज को आदर, श्रद्धा और अभिमान रहता है। इसलिए भाषा के कारण वाद-विवाद निर्मित होती है। मराठी भाषा के संदर्भ में विचार करे तो कोंकणी-मराठी वाद, महाराष्ट्र-कर्नाटक सीमा प्रश्न यह समाज, संस्कृति और भाषा से संबंधित है। समाज-संस्कृति-भाषा के सहसंबंध के विषय में डॉ. नंदकुमार मोरे ने कहा है “संपूर्ण मराठी भाषिक समाज की संस्कृति एक ही है ऐसा नहीं कहा जा सकता। तब भी व्यापक स्तर पर मराठी संस्कृति पर विचार करें तो मराठी समाज में व्याप्त रूढ़ि, परंपरा, विवाह-पद्धति, विविध धार्मिक विद्या, त्योहार, उत्सव, खेती, व्यवसाय, धर्म, तत्वज्ञान, कला, संगीत, शिल्प आदि के साथ समाज पर रहने वाला और संस्कृति संवर्धन के लिए महत्त्वपूर्ण रहने वाले साधू-संतों, महापुरुषों के विचारों का प्रभाव, विस्तृत मराठी भाषिक प्रदेश में मिलने वाली अनेक उपजाति आदि सभी घटकों से मिलकर मराठी संस्कृति सिद्ध हुई ऐसा कहा जा सकता है। इन सभी घटकों का मराठी भाषा पर प्रभाव दिखाई देता है। कौटुंबिक पद्धति, विवाह-पद्धति के कारण मराठी भाषा में अनेक कहावतें निर्मित हुई है। विविध उपजातियों के व्यवसाय के कारण बड़ा विस्तृत शब्द-संग्रह मराठी भाषा में प्रविष्ट हुआ दिखाई देता है। इसलिए किसी भी समाज का सूक्ष्म निरीक्षण करने के बाद समाज, संस्कृति और भाषा का परस्पर रूप से घनिष्ठतम संबंध स्पष्ट होता है।”

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि, समाजभाषाविज्ञान में भाषा का अध्ययन समाज को परिप्रेक्ष्य में रखकर किया जाता है जिसमें विशेषनाम का प्रयोग, सर्वनाम प्रयोग, रिश्तेवाचक शब्द, अभिनंदन प्रकार, भाषा-बोली एवं समाज के प्रश्न जैसे- बहुभाषिकता, द्वैभाषिकता, भाषा नियोजन, भाषा संपर्क आदि का अध्ययन किया जाता है। समाज अथवा राष्ट्र की भाषिक समस्याओं को पहचान कर उनका समाधान ढूंढने के लिए समाजभाषाविज्ञान का उपयोग होता है। भाषा समाज और संस्कृति की परिचायक होती है। समाज और संकृति की पहचान साहित्य के आधार पर होती है जिसका मुख्य आधार भाषा है।

संदर्भ सूची

तिवारी, भोलानाथ. (2013, संस्करण-57). भाषा विज्ञान. इलाहाबाद : किताब महल.

कुमार, प्रदीप. (2014). भाषाविज्ञान भाग-2. नागपुर : यश पब्लिशर्स.

मालशे, मिलिंद स. (2009, संस्करण-4) आधुनिक भाषाविज्ञान : सिद्धांत आणि उपयोजन. मुंबई: लोकवांग्मय गृह.

www.transframe.in ISSN 2455-0310

अध्ययन

अनुवाद : वर्तमान स्थिति एवं चुनौतियां

सूर्या ई.वी.
सहायक प्रोफ़ेसर
इलाहबाद केंद्र,
म.गां.अं.हिं.वि. वर्धा

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप आज के युग के मांग की उपज 'अनुवाद' है। संसार का समग्र ज्ञान पाने के लिए जीवन सीमित है और यह समग्र ज्ञान-विज्ञान किसी एक भाषा में समाहित नहीं है। ऐसी स्थिति में अनुवाद का अपना विशेष महत्व है। यदि कुमारन् आशान्, वल्लत्तोल, महाश्वेता देवी, सुब्रह्मण्य भारती, उमाशंकर जोशी, विजयदान देथा, टैगोर आदि सुप्रसिद्ध रचनाकारों की रचनाएं अनुवाद के माध्यम से हम तक न पहुंचती, तो भारतीय साहित्य संबंधी हमारा ज्ञान कितना सीमित होता, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। वर्तमान समय में अनुवाद का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह संभव नहीं है कि, वह एक या दो से अधिक भाषाएं भली-भांति सीख सके। इसलिए यह आवश्यक है कि, उनके लिए साहित्य एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य अपनी भाषा में उपलब्ध कराए जाए। इसके लिए अनुवाद ही एकमात्र साधन है।

> भारत एक बहुभाषिक देश है जहां २२ राजभाषाएं और करीब ४०० क्षेत्रीय भाषाएं अलग-अलग प्रांतों में बोली जाती हैं। ऐसे में भारतीय संस्कृति को एक सूत्र में साहित्य द्वारा पिरोए रखने का महान उत्तरदायित्व अनुवादकों का हैं।

भारत एक बहुभाषिक देश है जहां २२ राजभाषाएं और करीब ४०० क्षेत्रीय भाषाएं अलग-अलग प्रांतों में बोली जाती हैं। ऐसे में भारतीय संस्कृति को एक सूत्र में साहित्य द्वारा पिरोए रखने का महान उत्तरदायित्व अनुवादकों का हैं। यूंही किसी भी भाषा व साहित्य के उत्थान में अनुवाद का विशेष महत्व होता है। अनुवाद आज केवल साहित्य व कार्यालयी कामों तक ही सीमित नहीं बल्कि फ़िल्म, गानों के ज़रिए भी अपना प्रभाव बहुत तेजी से फैला रहा है। लोग न केवल अन्य भाषा की फ़िल्मों को देखकर अपना मनोरंजन करते हैं, साथ ही साथ कई नई चीजों का ज्ञान प्राप्त होता है और उन्हें समझने का मौका भी मिलता है। आजकल दक्षिण भारत की फ़िल्म को हिंदी में और हिंदी के कई सीरियलों को मलयालम आदि भाषाओं में, एवं विदेशी फ़िल्म को क्षेत्रीय भाषाओं में दिखाने के कारण अनुवाद, लोगों के बीच प्रसिद्ध होता जा रहा है।

अनुवाद रुपी औज़ार के माध्यम से आज अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक संबंध और राजनैतिक विधानों को बेहतर रूप से समझा जा रहा है। राष्ट्राध्यक्ष जो कुछ बोलते हैं, लिखते हैं, उसे अनुवाद के द्वारा ही समझा जा सकता है। अध्यापन कार्य में भी अनुवाद का महत्वपूर्ण योगदान है। विभिन्न भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं को समझने-समझाने में अनुवाद का विशेष महत्व है। दुनिया भर के देशों से संबंध बनाने में अनुवाद की भूमिका महत्वपूर्ण है। सांस्कृतिक विरासतों को भी अनुवाद के माध्यम से जाना पहचाना गया है।

अनुवाद के बिना देश का विकास संभव नहीं है। लेकिन यहां सवाल उठता है कि, देश के विकास में अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका होने के बावजूद आज भी दोयम दर्जे की स्थिति में क्यों है? अनुवाद के प्रति इस दोहरी मानसिकता को खत्म करना एक बहुत बड़ी चुनौती है। जिस तरह हम मूल रचना को महत्त्व देते हैं उसी तरह अनूदित रचना को भी महत्त्व देना चाहिए। क्योंकि सृजन चाहे मूल रचना का हो या अनूदित रचना का, वह लोगों के हृदय में जगह बना लेता है।

जिस तरह एक रचना अपनी भाषा में अद्वितीय है उसी तरह अनूदित रचना भी उस भाषा में महत्त्वपूर्ण है। वह द्वितीय श्रेणी का लेखन नहीं, मूल के बराबर का ही उत्कृष्ट प्रयास है। अनुवादक को भी संवेदनशील रहते हुए मूल भाषा के भाव का संरक्षण करने के लिए सर्जनात्मक होना पड़ता है। जिस तरह लेखक अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक तथा आर्थिक सूझ-बूज के सहारे विचारों और भावनाओं को रचना के माध्यम से प्रस्तुत करता है, उसी तरह अनुवादक भी कथ्य को आत्मसात करता है, उसे अपनी चित्तवृत्तियों में उतारकर पुन: सृजित करने का प्रयास करता है। तभी वह रचना सफल अनुवाद हो सकती है। यही नहीं, कभी-कभी अनूदित रचना मूल रचना की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हो जाती है। इस संदर्भ में बच्चन जी का विचार द्रष्टव्य है, "मैं, 'अनुवाद को यदि मौलिक प्रेरणाओं से एकात्मक होकर किया गया हो', मौलिक सृजन से कम महत्त्व नहीं देता। अनुभवी ही जानते हैं कि, अनुवाद मौलिक सृजन से अधिक कितना कठिन-साध्य होता है। मूल कृति से रागात्मक संबंध जितना अधिक होगा, अनुवाद का प्रभाव उतना ही बढ़ जाएगा। वस्तुत: सफल अनुवादक वही है जो अपनी दृष्टि भावों, कथ्य, आशय पर रखे। साहित्यानुवाद में शाब्दिक अनुवाद सुंदर नहीं होता। एक भाषा का भाव या विचार जब अपने मूल भाषा-माध्यम को छोड़कर दूसरे भाषा-माध्यम से एकात्म होना चाहेगा तो उसे अपने अनुरूप शब्दराशि संजोने की छूट देनी ही होगी। यहीं पर अनुवादक की प्रतिभा काम करती है और अनुवाद मौलिक सृजन की कोटि में आ जाता है।" (साहित्यानुवाद, संवाद और संवेदना, पृ. 85) कहने का तात्पर्य यह है कि, श्रेष्ठ अनुवाद की महत्ता मूल से कम नहीं हैं। जैसे कालीदास रचित 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का विलियम जोन्स द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद से जर्मन भाषा में जोर्ज फोर्स्टर ने जो अनुवाद किया, उससे कालीदास की प्रतिष्ठा विश्व में अंग्रेज़ी अनुवाद से काफी बढ़ी। इस तरह अनुवाद किसी भी रूप में दोयम दर्जे की चीज नहीं है। अनुवाद एक श्रमसाध्य और कठिन रचना-प्रक्रिया है। अत: कुल मिलाकर कहा जाए, तो हमें इस महत्वपूर्ण रचना विधा को अनुवाद साहित्य व अनूदित साहित्य का नाम देकर इसे मुख्य धारा में लाना अनुवाद के भविष्य के लिए अत्यावश्यक है। 'जब तक अनुवाद मुख्यधारा के साथ नहीं जुड़ेगा तब तक साहित्य का भी पूर्ण विकास संभव नहीं होगा।' क्योंकि अनुवाद आज भी हाशिए पर ही है भले ही विज्ञान, तकनीकी, साहित्य, धर्म-दर्शन, अर्थशास्त्र आदि ज्ञान-विज्ञानों के विकास ने अनुवाद की आवश्यकता को बहुत अधिक बढ़ावा दिया है।

अनुवाद की परंपरा प्राचीन है। लेकिन अनुवाद का सैद्धांतिक और व्यावहारिक अध्ययन अकादमिक स्तर पर शुरू हुए बहुत अधिक समय नहीं हुआ है। आज भी लोगों में यह संदेह है कि, अनुवाद करने के लिए अनुवाद के सैद्धांतिक अध्ययन की क्या जरूरत है, जबकि वह तो एक व्यवहारिक प्रयास है। लेकिन यह एक भ्रम है। श्री एन.ई विश्वनाथ अय्यर स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि, जिस समय उन्होंने अनुवाद कार्य शुरू किया था उस समय वे स्वयं अनुवाद चिंतन से परिचित नहीं थे। उस वक्त वे अपने मनमाने ढंग से अनुवाद किया करते थे। लेकिन जब वे अनुवाद के तत्वों के बारे में जान गए तब से उन्होंने सही तरह से अनुवाद करना शुरू किया। इसलिए अनुवाद-कर्ता को पहले अनुवाद के सैद्धांतिक पक्ष का अध्ययन करना चाहिए जिससे एक सही अनुवादक बनने का रास्ता दिखेगा। साथ-साथ अनुवादक इस बात से अवगत हो जाता है कि, अनुवाद-प्रकिया के दौरान उसके सामने क्या-क्या समस्याएं आ सकती हैं, जिनका सामना करने हेतु उसे किन-किन बातों पर अधिक ध्यान देना चाहिए और अनुवाद को सार्थक कैसे बनाया जा सकता है आदि-आदि। लेकिन इसके साथ यह भी महत्वपूर्ण बात है कि, केवल सैद्धांतिक पक्ष का ज्ञान होने से अनुवाद कार्य सक्षम नहीं बन सकता उसके लिए निरंतर अभ्यास की जरूरत है। अत: उन्हें अनुवाद के सैद्धांतिक पक्ष के साथ साथ उसके व्यावहारिक पक्षों पर भी बराबर ध्यान देना चाहिए। लेकिन विडंबना यह है कि, हमारे यहां अनुवादकों को प्रशिक्षण देने में इन दोनों पक्षों का सही मिश्रण नहीं हो पाता। इसलिए आज भी यहां अनुवाद की सार्थकता अनुवादक की क्षमता, उसकी भाषा पर पकड़, सर्जनात्मकता एवं अनुभव पर निर्भर करती है। भारत के कई विश्वविद्यालयों में अनुवाद के पाठ्यक्रम चलते हैं, परंतु यहां पर व्यावहारिक अनुवाद का अभ्यास बहुत कम ही किया जाता है; जैसे कि, एक सेमेस्टर में एक प्रोजक्ट के रूप में या

परीक्षा के एक पेपर के रूप में ही इसके व्यावहारिक पक्ष को सीमित कर दिया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि, अनुवाद के छात्रों को शिक्षा के बाद भी व्यवसाय स्तर पर पहुंचने से पहले कई सीढियों का फ़ासला तय करना पडता है। इसलिए हमें व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल देते हुए अनुवाद के पाठ्यक्रम में सुधार लाना पड़ेगा।

अन्य विषयों की तुलना में अनुवाद को कम प्राथमिकता देना अनुवाद के समक्ष एक मुख्य चुनौती है। इसके दो कारण हो सकते हैं- या तो जागरूकता की कमी, या रोजगार के अवसरों का अभाव। इस दयनीय स्थिति का आभास हमें विश्वविद्यालयों में अनुवाद पाठ्यक्रम की स्थिति, छात्राओं की संख्या में कमी और पुस्तकालयों व प्रकाशन संस्थाओं में अनुवाद संबंधी पुस्तकों की कमी आदि से पता चलता है। वर्तमान में भी भारत के बहुत कम विश्वविद्यालयों में ही अनुवाद का अध्ययन हो रहा है। वहां पर अनुवाद का अध्ययन कभी स्नातक या स्नातकोत्तर स्तर पर होता है। इसके अलावा अधिकतर केवल डिप्लोमा कोर्सेस ही होते हैं। अनुवाद में एम.फिल एवं पी.एच.डी के पाठ्यक्रम बहुत कम विश्वविद्यालयों में हैं। यहीं नहीं, यहां प्रवेश लेने वाले छात्र-छात्राओं की संख्या भी कम है।

अनुवाद के महत्व को ध्यान में रखते हुए भावी पीढ़ी में अनुवाद को लेकर एक जागरूकता लाने हेतु अनुवाद का पठन-पाठन स्कूलों में से शुरू किया जा सकता है। इसमें देश की प्रांतीय/क्षेत्रीय भाषाओं सहित विदेशी भाषाओं को शामिल किया जाना उचित होगा, जिससे अनुवाद विधा का महत्व तो बढ़ेगा ही साथ-साथ राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सांस्कृतिक संबंधों के साथ-साथ रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे। इसके अलावा कॉलेजों में अनुवाद संबंधित कार्यशालाएं आदि कराने की जरूरत है। अन्य विश्वविद्यालयों में जहां इसका अध्ययन नहीं हो रहा है वहां पर भी इसे लागू किया जाना चाहिए।

भूमंडलीकरण के इस दौर में इस क्षेत्र में भी आजकल रोजगार के कई अवसर आ रहें हैं। अनुवाद में रुचि लेने से आप साहित्यक हो या साहित्येत्तर हो या किसी भी विधाओं व विषय के हो, स्वतंत्र रूप से अनुवाद कर सकते है। यदि आप स्वतंत्र काम नहीं करना चाहते है, तो अनुभवी अनुवादकों के लिए सरकारी और गैर सरकारी एजेंसियों, विश्वविद्यालयों, प्रशिक्षण केंद्रो तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों में रोज़गार पा सकते हैं। मीडिया में अनुवाद का महत्व बढ़ा है। आजकल विदेशी और दक्षिण भारत की फ़िल्मों की हिंदी में या अन्य भारतीय भाषाओं में खूब डबिंग हो रही है। इसके लिए फ़िल्म के क्षेत्र में भी अनुवादकों की जरूरत है। इस लिहाज में देखें तो अनुवादकों को पहले से ज्यादा और विविध क्षेत्रों में कई अवसर मिल रहे हैं।

अनुवादक के सामने दूसरी चुनौती सांस्कृतिक असमानता है। अर्थात हर एक भाषा की संस्कृति दूसरी भाषा की संस्कृति से भिन्न होती है। संस्कृति से तात्पर्य है रहन-सहन, खानपान, वेशभूषा, जाति ,धर्म, सामाजिक व पारिवारिक संरचना, शिक्षा व्यवस्था आदि। इस संदर्भ में यह सवाल महत्वपूर्ण है कि, क्या पाठकों के एक नए समूह अनुवाद को स्वीकृत करेंगे जबकि वे दूसरी भाषा की संस्कृति से अनभिज्ञ है? यूंही दो विभिन्न भाषाओं के चारित्रिक अथवा सांस्कृतिक भेद के कारण अभिव्यक्ति के स्तर पर एक ऐसी दरार कायम हो जाती है जो अनुवाद के लिए एक बड़ी बाधा भी होती है और एक चुनौती भी।

अनुवाद में 'अन्य भाषा में समतुल्य वर्णों की कमी' भी एक प्रमुख चुनौती है। इस वजह हमें लिप्यंतरण करने में समस्याएं आती हैं। उसके समाधान स्वरूप अनुवादक मूल वर्ण से थोड़ा सा जुड़े हुए किसी वर्ण का प्रयोग करके अपना अनुवाद पूरा कर देता है या कभी छोड़ देता है। यदि अनुवाद को सक्षम बनाना है तो जरूरत इस बात की है कि, हमें द्रविड या किसी भी अन्य भाषाओं से हिंदी या अन्य भाषाओं में जहां हमें वर्ण की कमी महसूस हो रही है उनके लिए नये वर्णों का मानक रूप से गठन करें ताकि हर अनुवादक उन वर्णों के अभाव को पूरा करने हेतु उन गढ़े गए वर्णों का अपने अनुवाद में प्रयोग करें। ऐसा करने से लिप्यंतरण करते समय

आनेवाली समस्याएं एक हद तक दूर की जा सकती है। जैसे कि, मलयालम भाषा में ‘റ’ वर्ण है जिसके लिए हिंदी में ‘ र’ का प्रयोग किया जाता है। यहां इसका प्रयोग सही है बल्कि इसी तरह मलयालम में दूसरा वर्ण है- ‘ര’ जिसके लिए हिंदी में समतुल्य वर्ण उपलब्ध नहीं है। इसलिए ‘ര’ वर्ण के लिए भी हिंदी में ‘र’ का ही प्रयोग किया जाता है।

अनुवाद एक साधन है जिसके लिए कई सामग्रियों की अवश्यकता होती है। संदर्भ ग्रंथ, विषय विशेषज्ञ या मार्गदर्शक, शब्द-कोश, व्याकरणिक ग्रंथ, आदि । इनमें सबसे महत्वपूर्ण शब्दकोश है। अनुवाद में आवश्यकतानुसार कोशों की कम उपलब्धता अनुवादक के सामने बहुत बड़ी चुनौती है। जैसे कि, मलयालम भाषा में हिंदी से मलयालम शब्दकोश तो उपलब्ध हैं परंतु मलयालम से हिंदी शब्दकोश कम हैं। अनुवादक को मलयालम से हिंदी में अनुवाद करते समय शब्दकोश के अभाव के कारण काफी सारी तकलीफों का सामना करना पड़ता है। कुछ लोग ऐसे भी है जो बगैर कोश के अनुवाद करते हैं। लेकिन इस संदर्भ में एन.ई.विश्वनाथ अय्यर का कहना यह है कि, ‘अनुवादक के पास जितने अधिक शब्दकोश हों वह उतना ही अच्छा अनुवाद कर सकेगा।’ ऑनलाइन शब्दकोशों की सहायता से किसी भी दो भाषाओं के बीच अधिकतर शब्दों का उनके प्रयोग के साथ तात्पर्य उपलब्ध है। जिस कारण से अय्यर जी के ऊपरलिखित कथनानुसार अनुवादकों के लिए अनुवाद न केवल सरल बल्कि बेहतर, सूक्ष्म और अधिक विधिपूर्वक हुआ है। इससे समय का भी लाभ होने लगा है।

अनुवाद सदा संप्रेषण का माध्यम रहा है और इसकी प्राथमिकता दिन-ब-दिन और बढ़ती जा रही है। आज समाज के विकास के साथ-साथ भाषा में भी परिवर्तन हो रहा है। भाषा में नए-नए प्रयोजनमूलक रूपों (प्रयुक्तियों) का विकास हो रहा है। इस आधार पर भाषा को स्थानीय बोली, क्षेत्रीय बोली, मानक भाषा और अंग्रेज़ी शामिल भाषा के रूप में विभाजित किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि, इस बदलाव का अनुवाद पर पड़ने वाला प्रभाव ही एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। इस वजह अनुवादक की ज़िम्मेदारी भी दुगनी-तिगनी बढ़ जाती है। उसे मूल भाषा में आए परिवर्तन को समझकर लक्ष्य भाषा में शब्द खोजना पड़ता है।

आशा हैं कि, अनुवाद से सभी भारतीय भाषाओं के बीच सद्भावना का माहौल बने, वे एक-दूसरे से भावनात्मक स्तर पर जुड़ें और उनके बीच पारस्परिक आदान-प्रदान हों, लेकिन इसकी सफलता के लिए अनुवाद को हमें मुख्य धारा में लाना होगा जो कि, अब तक हाशिए पर ही है। उपर्युक्त चुनौतियों को दूर करके उत्तर आधुनिकता के प्रौद्योगिकी प्रगति के साथ अनुवाद का उच्च स्तर बनाए रखने का प्रयास किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

१) अनुवाद विज्ञान –भोलानाथ तिवारी

२) कृष्णकुमार गोस्वामी- अनुवाद विज्ञान की भूमिका

३) अनुवाद सिद्धांत एवं प्रयोग- डॉ. जी.गोपीनाथन

४) साहित्यानुवाद, संवाद और संवेदना

ISSN 2455-0310

अध्ययन

हिंदी सिनेमा के सामाजिक सरोकार

(सत्तर के दशक (1970-1979) की स्त्री-केंद्रित हिंदी फ़िल्म के विशेष संदर्भ में)

हिंदी सिनेमा ने यदि बर्बरता, भोगवाद और विलासिता को प्रोत्साहित किया है तो दूसरी तरफ ऐसी फ़िल्म का निर्माण भी लगातार जारी है जिनमें शांति, अहिंसा, शिक्षा, धार्मिक सदभाव, समुदायिक एकता, इंसानी भाईचारा, गरीबों उतपीड़ितों अथवा हशिए के लोगों के प्रति गहरी सहानुभूति का भाव हो।

आशीष कुमार
शोधार्थी, पीएच.डी.
प्रदर्शनकारी कला (फ़िल्म एवं रंगमंच)
नाट्यकला एवं फ़िल्म अध्ययन विभाग
म. गां. अं. हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
महाराष्ट्र- 442001
मो.- 9579667774
ई.मेल- ashishkumarphd@yahoo.com

सिनेमा के समीक्षकों/आलोचकों के समक्ष एक अनसुलझा सवाल हमेशा मुंह बाए खड़ा रहता है कि, सिनेमा कला है या व्यवसाय? ज्यादातर आलोचक सिनेमा को कला-रूप ही मानते हैं। उनका यह कहना है कि, सिनेमा एक कला माध्यम है जिसमें समस्त अन्य कलाओं का समावेश होता है। अब यदि सिनेमा को कला माध्यम माना जाए तो अन्य कलाओं की तरह ही इसका (फ़िल्म का) समाज के प्रति उत्तरदायित्व होना चाहिए। अर्थात सिनेमा के सामाजिक सरोकार भी होंगे ऐसा कहा जा सकता है।

हम सभी जानते हैं कि, किसी भी देश में बनने वाली फ़िल्में वहां के समाज और संस्कृति का प्रतिबिंब होती हैं। हिंदी फ़िल्म का संबंध भी अपने समय और भारतीय समाज से है। भारतीय समाज इन फ़िल्मों के प्रभाव से बच नहीं सकता क्योंकि हिंदी फ़िल्म इसी समाज में रहने वाले दर्शकों के लिए बनाई जाती है, चाहे फ़िल्मकार का उद्देश्य विशुद्ध मनोरंजन/व्यवसाय अथवा विशुद्ध कलात्मक अभिव्यक्ति हो। आमतौर पर लोग सिनेमा को केवल मनोरंजन का माध्यम मानते हैं और 'सिनेमा के सामाजिक सरोकार' विषय पर बात करने से कतराते हैं। यह एक गलत परंपरा है क्योंकि इस मान्यता के विपरीत दृश्य/श्रव्य माध्यम होने के कारण सिने-कला, कला के अन्य रूपों के बनिस्पत मानव मस्तिष्क पर तुरंत तथा व्यापक असर डालती है। जिससे कि, सिनेमा के सामाजिक उत्तरदायित्व के सबसे पुख्ता उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

उपर्युक्त संदर्भ में मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि, हिंदी सिनेमा में सबकुछ अच्छा-ही-अच्छा होता आया है। अर्थात हिंदी सिनेमा हमेशा सकारात्मक संदेश ही दर्शकों को संप्रेषित करता है। बल्कि यहाँ यह समझना ज्यादा जरूरी है कि, हिंदी सिनेमा ने यदि भाग्यवाद, सामंती आदर्शवाद, यथास्थितिवाद, प्रतिशोध पर आधारित बर्बरता, भोगवाद और विलासिता को प्रोत्साहित किया है तो दूसरी तरफ ऐसी फ़िल्म का निर्माण भी लगातार जारी है जिनमें शांति, अहिंसा, शिक्षा, धार्मिक सदभाव, समुदायिक एकता, इंसानी भाईचारा, गरीबों-उत्पीड़ितों अथवा हशिए के लोगों के प्रति गहरी सहानुभूति का भाव हो।

उपरोक्त सारे विषयों पर एक शोध आलेख में बात करना दुष्कर कार्य है , अतः अपने इस शोध आलेख में मैं हिंदी सिनेमा के निर्देशकों द्वारा एक ख़ास सामजिक सरोकार के अंतर्गत बनाई गई स्त्री –केंद्रित फ़िल्म की चर्चा करूंगा जो सत्तर के दशक (1970-1979) के हिंदी फ़िल्म पर आधारित होगा।

1972 ई.में मृणालसेन द्वारा निर्देशित 'मायादर्पण' एक असाधारण समझ वाली फिल्म है। जहां कंटेंट तथा फार्म को अलग-अलग देखना असंगत होगा। यद्यपि इस फिल्म का केंद्रीय-चरित्र एक स्त्री है और उसी के मुख्य-विषय के रूप में फिल्म के माध्यम से दिखाया गया है। इस फिल्म में स्त्री की दुनियांसीधे आख्यानात्मक विवरण के द्वारा नहीं दिखाया गया है बल्कि यह दर्शकों को उच्च क्वालिटी के सेन्सनेस से आच्छादित कर देती है, जो कि, हिंदी-सिनेमा के इतिहास में दुर्लभ है। यह फिल्म अपने थीम तथा ट्रीटमेंट में बिलकुल वास्तविक लगती है।

कला फिल्मों में ही वास्तव में स्त्री की दुनियां को नारीवादी परिप्रेक्ष्य से दिखाने की कोशिश की गई है। इन फिल्मों में तो स्त्रियों को अपना अधिकार नहीं मिलने पर लड़ते हुए/संघर्ष करते हुए अधिकार छिनने तक को दिखाया गया है। इन फिल्मों में एक बात गौर करने लायक है

कि, कला फिल्मों में शहरी स्त्रियों को तो अपने परिवार से संघर्ष करते अथवा वैवाहिक जीवन में होने वाले शोषण से विरोध करते दिखाया गया किंतु ग्रामीण स्त्रियों को उन्हीं अत्याचारों को झेलते हुए ही दिखाया गया है। श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित इस दौर की सभी फिल्मों में मुख्य पात्र महिलाएंही रही हैं जिनका शोषण उनका परिवार, समाज या पितृ-सत्तात्मक समाज करता है। इस तरह की फ़िल्म में स्त्रियों को दबाने तथा उनके अधिकारों से उन्हें वंचित रखने में महती भूमिका अदा खुद उसका जीवनसाथी करता है।

सन् 1974 में आई 'अंकुर' में शबाना आजमी को लक्ष्मी के रूप में सहज तथा कामुक दिखाने की कोशिश की गई है। मुख्यधारा के हिंदी-सिनेमा की उस समय की स्त्री छवि 'ग्लैमर-डॉल' से इन फिल्मों की स्त्रियों को अलग तरीके से चित्रित किया गया है। पूरी फिल्म में मुख्य चरित्र लक्ष्मी के कई कभी न भूलने वाले छवि से दर्शक रू-ब-रू होता है। लक्ष्मी अपने मालिक को पूरी गरिमा के साथ उसके साथ वापस जाने से मना करती है। उसका मालिक सूर्या (अनंत नाग) जब उसे वापस चलने के लिए प्रार्थना कर रहा होता है और अपने कृत्य के लिए माफी मांग रहा होता है तो लक्ष्मी के चेहरे पर विजय भावना के निशान स्पष्ट देखने को मिलता है। अपने मालिक के विनम्र निवेदन को लक्ष्मी बहुत प्रतिक्रियावादी तरीके से नहीं लेती। उसे जब पता चलता है कि, वह गर्भवती है तो वह चीखती-चिल्लाती नहीं है। बल्कि अपने गर्भ को स्वीकार कर वह बहुत शांत तरीके से काम पर जाती है। वह जमींदार (अनंत नाग) के कहने के बावजूद भी जब गर्भपात नहीं करवाती है तब इसका बदला उसके गूंगे-बहरे पति से लेने की कोशिश की जाती है। जब लक्ष्मी का पति अनाज चोरी के मामले में पकड़ा जाता है तब लक्ष्मी का मालिक/जमींदार/शोषक/सूर्या उस बेचारे (गूंगे-बहरे) के चेहरे को कालिख से पोतकर, गधे पर बैठाकर पूरे गांव में घुमाता है। सूर्या के इस अत्याचार से लक्ष्मी बहुत आहत होती है और वह जमींदार को बहुत कोसती है। इस दृश्य में सूर्या (जमींदार) दरवाजा बंद कर बेचैनी से उसे सुन रहा होता है। इस दृश्य में जमींदार युवक के प्रति निर्देशक की थोड़ी सहानुभूति का बोध होता है। उसे जिस रूप में दिखाया गया है यानि उस समय कैमरा से जो क्लोज-अप अंकित होता है उससे जमींदार युवक में परिवर्तन जैसी अनुभूति होती है।

लक्ष्मी द्वारा अपने शराबी तथा गूंगे-बहरे पति के लिए हुए अचानक झुकाव को हम स्त्रियों के स्टीरीयोटाइप चित्रण में ही रख कर देख सकते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि हमारा समाज इस बात को बहुत आदर्शीकृत करता है कि, चाहे पति जैसा भी हो वह पति है, भगवान के बराबर है और स्त्रियों को हमेशा इसका ख्याल रखना चाहिए। लेकिन जब जमींदार सूर्या (अनंत नाग) को यह लगता है कि, लक्ष्मी के गर्भवती होने का कारण वह खुद है यह गांव वाले को पता चल जाएगा और उसकी बदनामी होगी तो वह लक्ष्मी को अपने यहाँ से जाने को कहता है। वह लक्ष्मी से कहता है 'तुम्हें अपने इस कृत्य पर अर्थात् गर्भवती होने की घटना पर शर्म नहीं आती" तो लक्ष्मी का जवाब होता है- (वह कठोरता से प्रत्युत्तर में कहती है)- क्या तुम्हें शर्म नहीं आती? फिल्म के अंत से कुछ क्षण पहले एक स्त्री द्वारा एक पुरुष जो उसके गर्भ में पल रहे बच्चे का बाप है को धिक्कारना दिखाया जाना पूरी फिल्म में स्त्री की दुनियांके चित्रण को सार्थक बनाता नजर आता है और फिल्म का यह दृश्य दर्शक के मानस पटल पर अंकित हो जाता है सदा के लिए।

सन् 1977 ई.में आई 'भूमिका' जिसका निर्देशन श्याम बेनेगल ने किया था। 80 के दशक में भारतीय उत्तर-औपनिवेशिक इतिहास-लेखन ने पारंपरिक पुरुष-वर्चस्व से आक्रांत इतिहास-लेखन के कई बंद दरवाजों को खोला तथा इतिहास-अध्ययन में स्त्रीवादी-चिंतन को स्थान मिला। यह फिल्म इस दौर के यथार्थवादी सामाजिक-दृष्टि और इसी बौद्धिक उभार का एक कलात्मक प्रतिफल है। भारतीय समाज में स्त्री-संबंधी दृष्टिकोण में समय के साथ गुणात्मक परिवर्तन आए और कहना न होगा कि, इसमें बेनेगल के 'भूमिका' का महत्व क्या है।

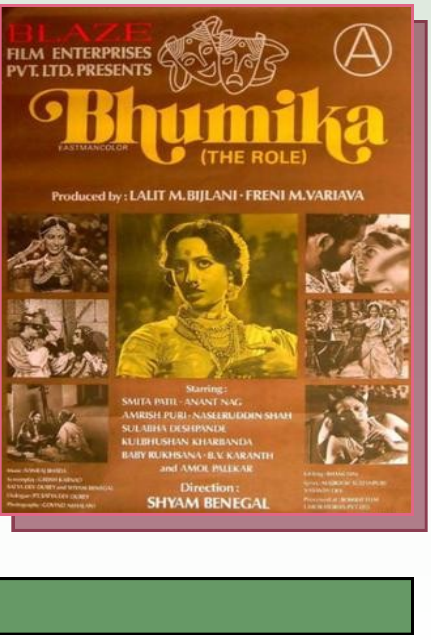

प्रसिद्ध फिल्म-अभिनेत्री (मराठी) हंसा वाडेकर की आत्मकथा 'सांगते आएका' पर आधारित है 'भूमिका' जिसकी पटकथा स्वयं श्याम बेनेगल ने गिरीश कर्नाड और पंडित सत्यदेव दुबे के साथ मिलकर लिखी है। "'सांगते आएका' संभवत: भारतीय साहित्य की परंपरा में किसी भी स्त्री के द्वारा लिखी गई ऐसी पहली आत्मकथा है जिसमें घरेलू-हिंसा से लेकर, बालशोषण और पुरुषों के द्वारा किए गए यौन-शोषण का इतना बेबाक बयान किया गया है। एक स्त्री होने के नाते बचपन से लेकर जवानी तक हंसा ने अपने को वस्तु हो जाने

की नियति को रेशा-रेशा उधेड़कर देखा है। हंसा की यह आत्मकथा हिंदुस्तानी समाज की आम स्त्रियों की पीड़ा का दस्तावेज है, जिसमें घर से लेकर बाहर तक पति, मित्र, प्रेमी सबने एक वस्तु के रूप में उसका उपयोग किया। श्याम बेनेगल ने एक काल्पनिक पात्र उषा (स्मिता पाटिल) के बहाने हंसा की अनदेखी जीवन-कला को सांस्कृतिक-समीक्षा के रूप में प्रस्तुत कर आम भारतीय-नारी की पीड़ा का महाकाव्य रचा है।

भूमिका में अमोल पालेकर ने उषा के पति का किरदार निभाया है। वह स्वयं जुआरी, शराबी, ऐशपसंद और पत्नी की कमाई पर मौज करने वाला इंसान है और पुरुषवादी-मानसिकता के कारण इस हीनग्रंथी का शिकार भी है कि, पत्नी की कमाई पर पल रहा है। अपनी इसी हीनताभाव के कारण वह उषा के चरित्र पर आक्षेप लगाता रहता है। ऐसा करने का एक महत्वपूर्ण कारण उषा पर मनोवैज्ञानिक दबाव बनाना होता होगा। ऐसा फिल्म से ध्वनित नहीं होता बल्कि व्यंजित होता है। ऐसे में ही उषा के अलग बैंक अकाउंट खोलने का राज उसके पति पर जाहिर होता है। उषा का उद्देश्य ऐसा करके अपनी बेटी के भविष्य को सुरक्षित करने का है, पर केशव (उसका पति) उषा के मंतव्य को समझता नहीं या कि, समझना नहीं चाहता। वह भयाक्रांत है कि, उषा इस तरह से उसकी निर्भरता से बाहर हो जाएगी। भारतीय स्त्री की यह विडंबना रही है कि, उसकी अपनी कमाई पर भी उसका पति, पिता या भाई अपना मौलिक अधिकार समझता है। फ्रांस में स्त्रीवादी आंदोलन की सूत्रधार सिमोन द बोउआर ने अपनी पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' में विस्तार से इस बात का विश्लेषण प्रस्तुत किया है कि, एक स्त्री की आजादी का रास्ता उसकी आर्थिक आजादी से प्रशस्त होता है। पर स्त्री की आजाद-ख्याल पुरुष वर्चस्व को चुनौती देकर ही संभव है, क्योंकि स्त्री-पुरुष के संबंधों में सामंती मूल्यबोध के आरोपन से पुरुषों ने कृत्रिम रूप से एक शक्ति-संघर्ष की स्थापना कर रखी है और अपने वर्चस्व को वह कुशलता से एक संस्थागत रूप दे रखा है| श्याम बेनेगल ने 'भूमिका' के माध्यम से न केवल स्त्री-अस्मिता के सवाल पर बहस किया बल्कि इस स्टीरियोटाइपिंग को भी तोड़ा कि, एक स्त्री को जीने के लिए एक पुरुष की अनिवार्य आवश्यकता होती है। हम 'भूमिका' में देखते हैं की उषा न केवल पति के शोषण का शिकार होती है, बल्कि मित्र, प्रेमी, सबने उसके स्त्री होने का फायदा उठाया है। विश्वसनीय साथी की तलाश से निराश होकर उषा अकेले रहने का निर्णय लेती है। यही इस फिल्म का चरमोत्कर्ष (Climax) तथा संदेश है।

श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित 'निशांत' (1975 ई।) में विश्वम और उसके भाई एक प्राथमिक पाठशाला के मास्टर (गिरीश कर्नाड) की पत्नी (शबाना आजमी) का अपहरण कर लेते हैं। अपनी हवस के लिए सुशीला का शारीरिक-शोषण करना उनका एकमात्र उद्देश्य होता है। मास्टर द्वारा जमींदार से अपनी पत्नी को वापस करने की प्रार्थना विफल होती है। हताश और मजबूर मास्टर पंचायत, पुलिस स्टेशन, जिले के कलेक्टर आदि से गुहार लगाता है पर कहीं से किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती। अखबार का संपादक तक इस दुर्दांत घटना पर हैरतज़दा होने के बजाए मास्टर को अखबार के नाम एक खत लिखने की सलाह देता है जबकि मास्टर इसे खत के रूप में नहीं खबर के रूप में छपवाना चाहता है। अखबार का संपादक मजबूरी का बहाना बनाता है और कहता है- 'भैया', अगर यह खबर छाप दें तो शायद छापाखाना बेचना पड़ेगा। इज्जत का दावा कर दिया उन लोगों ने, तो हर्जाना भरते-भरते दिवाला पिट जाएगा, हताश मास्टर मंदिर के पुजारी की सहायता से गांव के लोगों को एकत्र करता है और उनके समक्ष अपनी पत्नी के अपहरण को विराट सामाजिक घटना के रूप में प्रस्तुत करता है। सदियों से भयभीत समाज अचानक इस घटना के प्रति विद्रोही नहीं हो पाता है। लेकिन पुजारी तथा मास्टर अपना प्रयास जारी रखते हैं। सदियों से चली आ रही शोषण की यह परंपरा सुशीला के रूप में मूर्त हो उठती है और देवी पूजन के दिन संगठित किसानों और मजदूरों का समूह नियोजित रूप से ठाकुर की हवेली पर हमला बोल देते हैं। वर्षों से दबा हुआ जनता का आक्रोश बेहद हिंसक हो जाता है। जमींदार अपने सभी भाइयों सहित मारा जाता है। इस हिंसा में जमींदार विश्वास की पत्नी रूक्मिणी (स्मिता पाटिल) और सुशीला भी मारी जाती है जबकि ये महिलाएंस्वयं भी एक स्त्री के रूप में उन जमींदारों के थोथे मूल्यों और झूठी शानो-शौकत का ग्रास बनी हुई है। साथ ही साथ अपने अस्तित्वबोध के संकट से भी परेशान होती है। रुक्मिणी और सुशीला का इस फिल्म के अंत में हिंसा का शिकार हो जाना कष्टप्रद अवश्य है,पर वह जिस आक्रोश का शिकार होती है उसमें तार्किक होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। रूक्मिणी की मौत से उपजे उहापोह को पंडित ने अपने सात्विक अभिनय से सवाक कर दिया है। अचानक उठ खड़े हुए इस तूफान

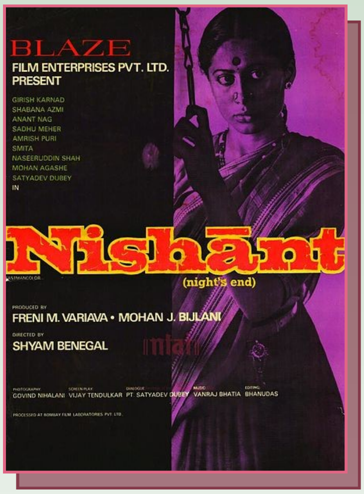

ने अमानवीय और शोषण पर आधारित तथा अंधेरे की हिमायती इस व्यवस्था का अंत कर अंध युग से बाहर आने की घोषणा कर दी। 'निशांत' स्त्रियों के लिए भी अंधेरगर्दी के अंत की घोषणा है।

जिन फ़िल्मों की चर्चा यहाँ की गई उसके निर्माण की पृष्ठभूमि पर बात करना यहाँ आवश्यक है। जनवरी, 1968 में मृणाल सेन और अरुण कॉल ने एक घोषणा- पत्र तैयार किया था जिसमें हिंदी फ़िल्मों पर व्यावसायिकता का एकाधिकार, फ़िल्म निर्माण की फार्मुलाबद्धता, कलात्मक सौंदर्य दृष्टि का अभाव, दर्शकों के बौद्धिक और मानसिक विकास के बदले निम्नस्तरीय, कुत्सित और कुरुचिपूर्ण फ़िल्म- दृश्यों के प्रति नशीला आकर्षण उत्तपन्न करने का फ़िल्म निर्माता का प्रयत्न, वितरण और प्रदर्शन के क्षेत्र में अच्छी फ़िल्मों को प्रवेश न करने देने के षड्यंत्र, सामजिक और मानवीय समस्याओं की उपेक्षा, थोड़े मनोरंजन द्वारा मात्र धन कमाने की लिप्सा आदि की चर्चा करते हुए विकल्प के रूप में नए सिनेमा की आवश्यकता, उपयोगिता और उसके उद्देश्य पर प्रकाश डाला गया था। इस घोषणा-पत्र में नया सिनेमा की कोई संतोषप्रद परिभाषा नहीं गढ़ी गई थी, जो कि, तब संभव भी नहीं था, क्योंकि परिभाषाएं या आलोचना सर्जना पश्चात ही संभव हो पाती हैं। लेकिन यह स्पष्ट रूप से लिखा गया था कि,

"व्यावसायिक सिनेमा की कुत्सित रुचि के विरुद्ध नया सिनेमा एक बेहतर सिनेमा के लिए अनवरत और चेतनायुक्त आंदोलन है। अनेक देशों में इस प्रकार के आंदोलन सामने आए हैं। हमारा विश्वास है कि, इस आंदोलन को पनपने के लिए सही जलवायु यहाँ मौजूद है"।

इस तरह से सत्तर के दशक की शुरुआत से ही हिंदी फ़िल्म का दो धाराओं में विभाजन हो गया। एक धारा बड़ी-बड़ी बजट की, आम लोगों के रंग-बिरंगे सपनों को संजोए नाच- गाना, प्रेम कहानियों और मार पीट से भरपूर, दर्शकों के लिए उनका पूरा पैसा वसूल के सिद्धांत पर फ़िल्में बनाने लगी तो ठीक इसके सामानांतर दूसरी धारा/ नई धारा ने कम बजट की फ़िल्म का निर्माण किया जिसमें आम लोगों के जीवन पर देश की विकराल राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से प्रभावित और यथार्थवादी कथाओं पर आधारित सार्थक कला फ़िल्म का निर्माण शामिल था।

इस आलेख में जिन फ़िल्म की चर्चा की गई है वे इसी नयी धारा के अंतर्गत बनाई गई थी जो समाज के प्रति विशेष सरोकार के तहत बनाई गई और अपने समय काल में उस उद्देश्य में सफल भी रही। विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि, 70 के दशक का हिंदी सिनेमा स्त्री की दुनिया को बेबाकी से दिखा रहा था। स्त्री –जीवन के मुद्दों एवं समस्याओं को लेकर हिंदी सिनेमा ईमानदार भूमिका निभा रहा था। साथ ही साथ उस समय की फ़िल्म समाज के यथार्थ को भी दर्शक के सामने लाने का प्रयास कर रही थी।

संदर्भ- ग्रंथ:

- ओझा अनुपम, *भारतीय सिने सिद्धांत*, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 2009.
- सिन्हा प्रसून, *भारतीय सिनेमा: एक अनंत यात्रा,* श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2006.
- कुमार कौशल, *'श्याम बेनेगल कला की जीवनधर्मिता का हिमायती'*, समसामयिक सृजन, अक्टूबर-मार्च, 2012-13 (संयुक्तांक).
- पारख जवरीमल; *लोकप्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ,* अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, 2001.
- अग्रवाल प्रहलाद (संपादक); *हिंदी-सिनेमा बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक,* साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009.
- परवीन फरहत (सं.), *सामाजिक मूल्यों से स्त्री का अंतर्द्वंद्व*, आजकल, मार्च, 2014, दिल्ली
- पारख जवरीमल ; *हिंदी सिनेमा का समाज शास्त्र*, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली 2006
- Somaaya Bhawana, Kothari Jigna, Madangarli Supriya; *Mother Maiden Mistress: Women in Hindi Cinema, 1950-2010*, Harper Collins, India, Delhi.

www.transframe.in ISSN 2455-0310

सिनेमा में दलित प्रश्न और 'फेंड्री'

सिनेमा एक दृश्य-श्रव्य माध्यम है। यह सबसे अधिक संप्रेषणीय विधा है। साहित्य की ही तरह सिनेमा भी अपनी मूलभूत संवेदना सामाजिक सरोकारों से ही प्राप्त करता है। इसकी पहुंच समाज के हर तबके तक है। समाज के हर तबके तक अपनी पैठ के कारण सिनेमा का एक बड़ा बाज़ार बन चुका है और आज वही दिखाया जा रहा है, जो एक बड़ा वर्ग देखना पसंद करता है। वह बड़ा तबका मात्र मनोरंजक फ़िल्में देखना पसंद करता है। आज का समाज सिनेमा से बहुत अधिक संचालित है। पूरा मध्य वर्ग व निम्न-मध्य वर्ग का समाज अपने खाने, पहनने, चलने, बोलने आदि सब कुछ सिनेमा द्वारा संचालित होता जा रहा है। "भारत दुनिया का सबसे अधिक फ़िल्म बनाने वाला देश है। आज भारत में हर साल लगभग पच्चीस भाषाओं पर फ़िल्में बनती हैं।"(पत्रिका नया पथ: हिंदुस्थानी सिनेमा के सौ बरस पर केंद्रित, जनवरी-जून 2013, पृ.3) जबकि सिनेमा दरअसल दो भागों में बंटा है- कमर्शियल सिनेमा और समांतर सिनेमा। कमर्शियल सिनेमा में मात्र मनोरंजक फ़िल्में ही देखने को मिलती हैं। लेकिन जब बात समांतर सिनेमा की हो तो कई समस्यापरक फ़िल्में देखने को मिलती हैं। जैसे- 'डोर', '15 पार्क एवेन्यू', 'अंतर्द्वंद्व', 'मंडी', 'बाज़ार', 'सद्गति', 'अछूत कन्या' आदि। जब हम भारत में समस्यापरक सिनेमा में दलित केंद्रित फ़िल्में ढूंढने निकलते हैं तो बहुत ही कम फ़िल्में देखने को मिलती हैं। जबकि प्रादेशिक सिनेमा, उसमें भी मराठी सिनेमा इस विषय में हिंदी सिनेमा से अधिक समृद्ध देखने को मिला, जिसमें जोगवा, फेंड्री आदि जैसी श्रेष्ठ फ़िल्में देखने को मिलीं। यह शोध आलेख मराठी फ़िल्म 'फेंड्री' पर केंद्रित है।

> कोई भी चाहकर उग्र नहीं होता। उसके उग्र होने के पीछे शोषण की एक लंबी प्रक्रिया होती है, जो उसे विद्रोह करने पर मजबूर कर देती है। नागराज मंजुले इस फ़िल्म को समाज के आइने के रूप में पेश करते हैं।

'फेंड्री' का सामान्य अर्थ है- सूअर। वह सूअर जो इस देश व समाज के सभी जीव-जंतुओं में सबसे निकृष्ट दृष्टि से देखा जाता है। इस फ़िल्म को निर्देशित किया है नागराज मंजुले ने। 'फेंड्री' की कहानी दलित परिवार में रहने वाले एक किशोर की है। उसका नाम जब्या (जांबवन्त कचरू माने) है। कचरु माने उसके पिता का नाम है। कहानी महाराष्ट्र के अकोलनेर नाम के गांव की पृष्ठभूमि और इस गांव के इस इकलौते माने परिवार व मुख्यतः जब्या के इर्द-गिर्द घूमती है। जब्या का परिवार अपने जीवनयापन, मात्र दो वक्त की रोटी जुटाने के लिए बहुत संघर्ष करता है। उन्हें पूरे परिवार के साथ मेहनत मजदूरी करनी पड़ती है। जब्या को भी स्कूल छूटने के बाद अक्सर काम पर जाना पड़ता है और कभी-कभी तो इस कारण से स्कूल से छुट्टी भी लेनी पड़ती है। भारत के किसी भी आम गांव की तरह अकोलनेर की स्थिति है। इस गांव में भी ऊंची जाति का दबदबा है। उच्च वर्ण आर्थिक रूप से संपन्न भी है इसलिए दलित व अन्य वर्ग पर उसका दबाव बना रहता है। जब्या सातवीं कक्षा का छात्र है। वह अपनी ही कक्षा में पढ़ने वाली शालू नाम की सवर्ण लड़की से

मेघा
पीएच.डी.
हिन्दी एवं तुलनात्मक साहित्य
महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

मन ही मन प्यार करता है। पर चूंकि वह एक गरीब दलित परिवार से है और गांव की सामाजिक दशा उसे यह हिम्मत नहीं देती कि, वह अपने दिल की बात शालू तक पहुंचा सके। उसके दिल का हाल जानने वाला पूरे गांव में केवल एक लड़का है पिरया (पिराजी)। पिरया ही उसका हमराज़ व हमदर्द है। पिरया को छोड़ कर पूरे गांव के लोगों व अपने सहपाठियों द्वारा हमेशा जब्या का उपहास ही देखने को मिलता है। पिरया के अलावा एक अधेड़ उम्र का चंक्या (चंकेश्वर साठे) भी उसका एक साथी है। चंक्या पूना के आस-पास के किसी गांव से आया व्यक्ति है। वह जब्या के हमदर्द के रूप मे जगह-जगह जब्या को हिम्मत बांधता दिखता है। चंक्या का किरदार अदा करने वाला अदाकार और कोई नहीं फ़िल्म के निर्देशक नागराज मंजुले हैं। चंक्या का किरदार जब्या के दिल में एक सकारात्मकता को बनाए रखने के कारण एक बहुत ही खास किरदार के रूप सामने आता है। चंक्या जब्या के गांव में 'साइकल मार्ट और कैरम हाउस' नाम से एक दुकान चलाता है। वह साइकिलों की मरम्मत करता है व साइकिल को किराए पर देता है, तथा साथ ही कैरम भी खेलने खिलाने का व्यापार करता है। जब्या का यहां नियमित रूप से आना जाना है। वह बैठे-बैठे लोगों को खेलते देखता है। लेकिन उसका यहां रोज़ाना आने का कारण यह है कि, जिस जगह यह दुकान है, उसके ठीक सामने शालू का घर है। स्कूल जाने से पहले ही जब्या रोज़ उसकी दुकान में बैठकर चोरी-चोरी नज़रों से शालू को ताकता रहता है और शालू के पीछे-पीछे वहां से स्कूल निकल जाता है।

जब्या अपने मजदूरी तथा अपने परिवार की स्थिति को अपने सहपाठियों से और विशेषतः शालू से लगातार छिपाने की कोशिश करता दिखता है। अक्सर जब स्कूल से छुट्टी लेकर काम करने जाता है तो काम से लौटते समय वह छिपता-छिपाता घर जाता है क्योंकि स्कूल से छुट्टी का और काम से लौटने का समय लगभग एक ही होता है। खासतौर से शालू को वह यह कभी पता नहीं चलने देना चाहता कि, वह कितना गरीब व दरिद्र स्थिति में है। उसके पास पहनने के लिए ढंग के कपड़े भी नहीं है। वह अपने परिवार की हर स्थिति से अवगत है, लेकिन अपनी उम्र के हर किशोर की भांति उसके अपने कुछ शौक व सपने हैं। वह भी चाहता है कि, उसके पास अच्छे कपड़े हों, जिनसे वह शालू को अपनी ओर आकर्षित कर सके। वह चाहता है कि, शालू भी उसे वैसे ही प्यार करे जैसे वो उससे प्यार करता है। उसे लगता है कि, यदि वह अपनी आर्थिक स्थिति ठीक कर लेगा तो शायद शालू उसके पास आ जाएगी। इसके लिए वह पड़ोस के गावों में आइसक्रीम व कोला बेचने का भी काम करता है। इनसे कमाए हुए पैसों से वो अपने लिए जींस पैंट और टीशर्ट खरीदने की योजना बनाता है, लेकिन दुर्भाग्यवश इस योजना में पानी फिर जाता है और वह बहुत हतोत्साहित हो जाता है।

ऐसे में चंक्या उसका उत्साहवर्धन करता है। पिरया हर दुख-सुख में उसके साथ दिखाई देता है, फिर वो कक्षा में हो, शालू के इंतज़ार में चंक्या की दुकान पर जाकर बैठना हो, काली चिड़िया के शिकार में जंगल-जंगल भटकना हो, मेले में जाना हो, आइसक्रीम व कोला बेचने के लिए गांवों की गली-गली में धूप में फिरना हो आदि। चंक्या आमतौर पर समाज में पाए जाने वाले ऐसे व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता दिखता है, जो अपने जीवन में बेकार है लेकिन अपने अनुभवों को लोगों से साझा करने में चूकता नहीं है। लोग उसे गपोड़ी समझते हैं, जो शायद सच ही होता है। यह जब्या को चाहता है। उसे समझता भी है, समझाता भी है। यह पियक्कड़ शराबी जब्या जैसे बच्चे के माता-पिता की आंखों में खटकता भी है। जब्या का पिता कचरू जो स्वयं समाज में उपेक्षित है, जब्या को चंक्या से दूर रहने की हिदायत देता दिखता है। उसे डर है कि, कहीं उसकी संगति में जब्या बिगड़ न जाए। जबकि जब्या का चंक्या पर बहुत विश्वास है। इस किरदार का शेड सकारात्मक है या नकारात्मक यह तो समझ नहीं आता, लेकिन इस तरह की मिलती-जुलती शख्सियत आमतौर पर बाज़ारों व दुकानों पर देखी जा सकती है।

फ़िल्म की शुरुआत से ही जब्या को एक काली चिड़िया के पीछे भागते हुए दिखाया गया है। पूरी फ़िल्म में समय-समय पर

वह काली चिड़िया दिखाई देती है और अंत तक उसके हाथ नहीं आती। वह और पिरया लगातार उसे पकड़ने के असफल प्रयास में लगे रहते हैं। जिस काली चिड़िया के पीछे वह भागते रहते हैं वह काली चिड़िया कोई और नहीं जब्या की महत्वाकांक्षा का प्रतीक है, जो शालू से जुड़ी है और जिसे पूरा करने के लिए जब्या न केवल गांव में अपने परिवार के साथ छिपता-छिपाता मज़दूरी करता है, बल्कि स्कूल के बाद अपने आस-पास के गांवों में आइस्क्रीम व कोला बेचने का काम भी करता है और इसके साथ अपनी कक्षा में भी ध्यान देता है। कक्षा छूटने पर अपने सहपाठियों से पता करके अपना गृहकार्य व कक्षा में पढ़ाया जाने वाला हर कार्य रात-रात भर जागकर पूरा करता है। काली चिड़िया का एक अन्य परंतु प्रत्यक्ष पक्ष यह भी है जो जब्या के व्यक्तित्व और उसकी महत्वाकांक्षाओं में चंक्या जैसे पात्र का प्रभाव भी दिखलाता है। चंक्या ने उसे बताया है कि, उस काली चिड़िया को जलाकर उसकी राख अगर किसी पर डाल दी जाए तो वो उसके वश में हो जाएगा। जब्या शालू से प्यार करता है। वह इस सामाजिक ढांचे से न केवल अवगत है बल्कि इससे सबसे अधिक प्रताड़ित भी है। उसके हर सपने और हर महत्वाकांक्षा का केंद्र शालू के ही इर्द-गिर्द घूमता रहता है। वह यह जानता है कि, शालू कभी भी उसे स्वीकार नहीं करेगी, अतः वह उस काली चिड़िया की राख़ से उसे अपने वश में करने का टोटका अपनाने का भी पूरा प्रयास करता है। यह अलग बात है कि, अंत तक वह काली चिड़िया उसके हाथ नहीं लग पाती।

फ़िल्म के कुछ सीन दर्शकों का दिल द्रवित करने वाले है। जब मेले में कचरू नाचते हुए जब्या को जबरन ले जाकर उस मेले का मजदूर बना देता है। एक रौशनी करने वाला, हाथ में ट्यूबलाइट लेकर चलने वाला जब्या अपने सपनों को चूर-चूर होता देखता है। इसी प्रकार हर रोज़ उसके आत्मसम्मान को चोटें पहुंचती हैं। जहां सब बड़े, बूढ़े व बच्चे नाच रहे होते हैं, जिनमें जब्या के सहपाठी जो उसे खास चिढ़ाने के लिए उसके इर्द-गिर्द नाच रहे हैं, वहां जब्या आंखों में आंसू और अपने सर पर ट्यूबलाइट लिए चल रहा है। गांव के मेले में सूअर यहां-वहां गंदगी मचाए फिरते हैं। भगवान की पालकी निकलते समय एक सूअर उस तथाकथित पवित्र स्थान से गुज़र जाता है। थोड़ी देर बाद पालकी उठाने वालों में से आगे चलने वाला व्यक्ति गिर पड़ता है, जिस कारण पालकी भी गिर जाती है। ये उच्च सभ्य वर्ग में एक अपशगुन माना जाता है। ऐसे में पाटिल कचरु को बुलाता है और एक बड़ा सूअर पकड़ कर ले जाने को बोलता है। कचरू बोलता है कि, उसकी छोटी बेटी सुरेखा की दो दिन में शादी है तथा उसके पैर में कुछ दिनों से बहुत दर्द है, अतः उसके लिए यह कार्य बहुत मुश्किल है। उसके अकेले के बस का नहीं है। परंतु पाटिल नहीं मानता और उसे बोलता है कि, वह अपने परिवार के सभी सदस्यों को लेकर जाय और स्कूल के पीछे बहुत सारे सूअर हैं। उनमें से एक बड़े सूअर को पकड़ कर ले जाए, मारने के लिए। यदि वह ऐसा करेगा तो पाटिल उसे गांव के फ़ंड में से उसकी ज़रूरत के हिसाब से पैसे देगा। कचरु को बेटी की शादी के दहेज के लिए पैसे की वैसे ही बहुत ज़रूरत है। अतः वह तैयार हो जाता है।

अगले ही दिन सुबह-सुबह उसकी पत्नी, दो बेटियां और एक बेटा जब्या ऐसे अपने पूरे परिवार को लेकर वह सूअर मारने के लिए चल पड़ता है। सुरेखा जिसकी शादी है, अपने हाथ में शगुन की महंदी लगाए पिता के पीछे-पीछे सूअर मारने के लिए चल पड़ती है और सारा दिन धूप में खपती है। जब्या के लिए यह बेहद शर्मनाक घड़ी होती है क्योंकि स्कूल का समय होने को है और उसके सहपाठी स्कूल आना शुरू कर देते हैं और पीछे सूअर के शिकार का तमाशा देखने खड़े हो जाते हैं। जब्या अपने पूरे परिवार के साथ सूअर पकड़ने के लिए संघर्षरत है और उसका पूरा स्कूल खूब मज़े से यह तमाशा देख रहा है। स्कूल की घंटी बजती है। बच्चे कक्षा लेने अपनी-अपनी कक्षाओं में चले जाते हैं। जब्या की जान में जान आती है, वह फिर लग जाता है परिवार के साथ सूअर मारने। स्कूल का समय खत्म हो जाता है लेकिन सूअर हाथ नहीं आता है, अब तक वे लगातार काम में लगे हैं। इतने में स्कूल की घंटी बज जाती है। और फिर तमाशा देखने वालों की भीड़ जमा हो जाती है। इस बार जब्या के लिए असहाय हो जाता है,

क्योंकि इस बार भीड़ में शालू भी है। वह जाकर छुप जाता है। उसके घर वाले उसे आवाज़ देते-देते थक जाते हैं, लेकिन वह बाहर नहीं आता। थोड़ी देर में सूअर के पीछे भागते-भागते कचरु को जब्या मिल जाता है और वो गुस्से में लाल हो कर उसे पीटते हुए बाहर लाता है। जिस इज्ज़त को जब्या इतनी देर से बचाने की कोशिश में लगा हुआ था, वह पूरी तरह मिट्टी में मिल चुकी होती है। अब अपना सारा गुस्सा वह सूअर पकड़ने में लगा देता है और सफल हो जाता है। लेकिन उसका दिल बुरी तरह टूट चुका होता है क्योंकि इतने दिनों से वो जिस शालू के आगे अपनी इन परिस्थितियों को छिपाता फिर रहा था, वो भी आज इस भीड़ व अन्य सहपाठियों के साथ इस तमाशे में भरपूर मज़ा ले रही थी। जब्या चोरी-चोरी नज़रों से उसे खिलखिलाकर हंसते हुए देखता है। इस पूरे तमाशे के दौरान उसके सहपाठी लगातार उसे फेंड्री यानि सूअर बोल-बोल कर छेड़ते जा रहे थे। जब्या चुपचाप अपने परिवार के साथ सूअर लिए घर की ओर निकल जाता है। तमाम दर्शक उसके साथ हो लेते हैं और उसे लगातार चिढ़ाते रहते हैं, उसकी बहनों पर फब्तियां कसते हैं।

इतने दिनों से मन में ज्वालामुखी दबाये जब्या के लिए यह सब असहनीय होने लगता है। लगातार खुद को रोकने के प्रयास में उसका इतने लंबे समय से दबा गुस्सा अचानक आज फूट पड़ता है और किसी के संभाले नहीं संभलता है। लगातार पत्थर उठाकर सबको मारता चला जाता है। लगातार चुपचाप शोषण का शिकार एक शोषित आज विद्रोह कर उठता है। इससे पहले तक उसके मन में शालू को लेकर हर आकांक्षा आज ध्वस्त हो चुकी थी। मन की वह उम्मीद कि, शालू भी शायद मन ही मन उसे चाहती है, ध्वस्त हो चुकी थी। इसी दुख ने उसके अंदर की हर सहन शक्ति को आज समाप्त कर दिया और जब्या का साक्षात्कार एक कड़वे यथार्थ से हुआ। वह हर शोषण का विद्रोह कर उठा। यही इस फ़िल्म का अंत है जो एक विद्रोह की शुरुआत है। फ़िल्म के अंत में जब्या द्वारा मारे जाने वाला पत्थर दरअसल फ़िल्मकार की चोट है इस दोगुले समाज को। यह वह समाज है जो एक ओर तो गांधी, अंबेडकर, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले का आदर्श हम सबके सामने रखता है और दूसरी ओर इनका व्यवहार किसी भी आदर्श के समकक्ष तो क्या आस-पास भी दिखाई नहीं देता। अतः फेंड्री इस समाज को मारा जाने वाला पत्थर है।

मुख्यतः यह कहानी जब्या व उसके संघर्ष की है। जब्या जो दरअसल एक प्रतिनिधि पात्र है उस समुदाय का जो आज आज़ादी के 65 वर्षों के बाद भी अछूत माना जाता है। इसे और ठीक करके कहें तो यह उस पात्र का प्रतिनिधित्व करता नज़र आता है, जिसे समाज के अन्य वर्गों ने अपने समान अभी तक स्वीकारा नहीं है। जो जन्म ही तथाकथित उच्च वर्णों की सेवा करने के लिए व गालियां खाने के लिए लेते हैं। फ़िल्म में यह साफ दिखाया गया है कि, किस प्रकार एक 13-14 वर्ष का बच्चा हमारे समाज की जाति-व्यवस्था का शिकार होता है। किस प्रकार वह अपना बचपन खो देता है। खेलने-कूदने की उम्र में मजदूरी करता है। उससे भी यह अपेक्षा की जाती है कि, वह भी अपने पिता की तरह गांव भर की चाकरी करे, पर यह जब्या को स्वीकार नहीं। वह शांति से प्रतिरोध करते हुए दिखता है, यह कहता हुआ कि, यह मेरा काम नहीं है। एक ओर स्कूल में जाति-पाति के खिलाफ पढ़ाया जा रहा है। लेकिन व्यवहार में आज भी वही पुरानी घिसी-पिटी मान्यताएं देखने को मिलती हैं। फ़िल्म इस कॉन्ट्रास्ट को दिखाने में सफल दिखती है। अंबेडकर, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले के महाराष्ट्र के गांवों में आज भी यह भेदभाव देखने को मिलता है। फ़िल्म में किशोर मनोविज्ञान को बहुत गहराई से दर्शाया गया है। किशोरावस्था में जब्या जैसे किसी भी बच्चे की प्रेरणा उसकी उम्र की एक लड़की का होना स्वाभाविक है। इसी मनोविज्ञान को समझते हुए नागराज मंजुले ने शालू को जब्या की प्रेरणा के रूप में दिखाया है। वह उसकी नज़र में अच्छा होने के लिए कुछ भी कर सकता है। वह कोई मेहनत करने से नहीं चूकता। वह सिर्फ शालू को पाना चाहता है, लेकिन उससे दिल टूटते ही उग्र प्रतिरोध कर उठता है। सूअर को कहानी में इस दलित समाज के प्रतीक के रूप में रखा गया है। निर्देशक अपनी दृष्टि दर्शकों को बखूबी ढंग से समझा पाए हैं कि, किस प्रकार एक दबित-कुचलित वर्ग उग्र होता है। फ़िल्म

मे यह साफ झलकता है कि, कोई भी चाहकर उग्र नहीं होता। उसके उग्र होने के पीछे शोषण की एक लंबी प्रक्रिया होती है, जो उसे विद्रोह करने पर मजबूर कर देती है। नागराज मंजुले इस फ़िल्म को समाज के आइने के रूप में पेश करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार-

फ़िल्म 'फेंड्री' , निर्देशक- नागराज मंजुले, रिलीज़- 14 फरवरी 2013

संदर्भ ग्रंथ-

भारतीय हिंदी सिनेमा की विकास यात्रा, वीरेंद्र सिंह यादव, पैसिफिक बुक इंटरनेशनल, 2012, दिल्ली।

पत्रिकाएँ –

नया पथ : हिन्दुस्तानी सिनेमा के सौ बरस, जनवरी-जून : 2013(संयुक्तांक), मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, नई दिल्ली।

हंस : हिंदी सिनेमा के सौ साल, फरवरी 2013, राजेंद्र यादव, नई दिल्ली।

वसुधा : हिंदी **सिनेमा पर केन्द्रित, अंक 81, सितंबर 2009, स्वयं प्रकाश, भोपाल।**

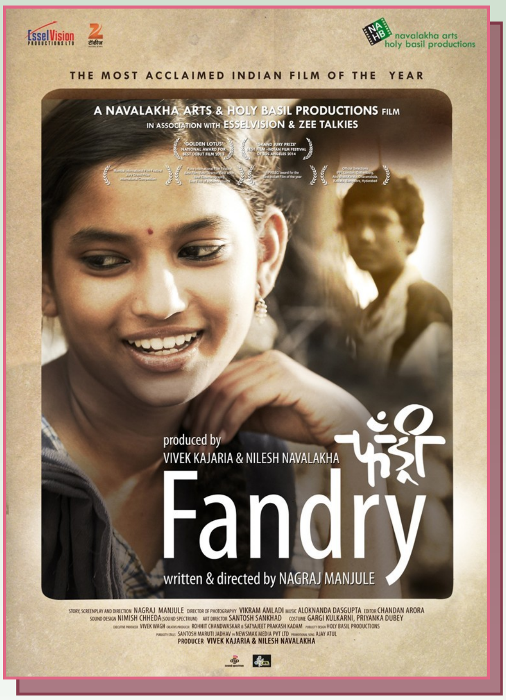

 ISSN 2455-0310

आलोचना: वर्तमान संदर्भ

देविन्दर सिंह
एम.फिल. शोधार्थी
हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
sabharwaldevinderègmail.com
Mob.no. 9911021070, 7038157682
महात्मा गांधी अतंरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा. महाराष्ट्र

नित्य के व्यवहारिक जीवन में किसी न किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा कार्यकलाप की समीक्षा में हमारी सहज प्रवृत्ति होती है। किंतु संस्कारों, चिंतन क्षमता एवं सामाजिक अवधारणा और अन्य व्यक्तिगत विशेषताओं के परिणामस्वरूप हमारी प्रतिक्रियाओं में प्रायः अंतर रहता है।

मानव की सहज प्रवृत्ति है और प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्ति आलोचक होता है। वह किसी भी वस्तु, विषय या व्यक्ति के संपर्क में आने पर मनुष्य उसका कुछ न कुछ प्रभाव ग्रहण करता है। यह प्रमाण उसकी रूचि और भाव से होते हुए उस वस्तु, विषय या वस्तु का संज्ञान अथवा अचेतन रूप से मनुष्य कुछ न कुछ विश्लेषण भी करता है यह क्रिया बौद्धिक अधिक होती है। उसके बाद उसकी अच्छाई-बुराई आदि के बारे में एक निश्चित मत भी बना लिया जाता हैं। उदाहरण के रूप में, एक व्यक्ति एक दुकान में कपड़े देखता है। कुछ कपड़ों को देखते ही वह उनकी ओर आकर्षित होता है। आकर्षित होने के बाद कपड़ों को हाथ में लेकर अधिक निकट से उनके रंग, डिजाइन, बनावट, टिकाऊपन, मूल्य आदि को देखता-पूछता है। इस पूरे परीक्षण में वह अपनी बुद्धि का भी उपयोग करता है और साथी या दुकानदार या अन्य किसी ग्राहक की भी राय लेता है और प्रभावित होता है। अंत में वह एक या कुछ कपड़ों को अच्छा या बुरा निर्णय देते हुए खरीदता है। इस प्रकार, आलोचना के मूल में अंतर कर सकने वाली शक्ति निहित होती है। अब आलोचना के अन्य पहलुओं पर जाने से पहले आलोचना के अर्थ और परिभाषा पर नजर डाल लेते हैं-

'आलोचना' 'लोच' धातु से बना है। किसी वस्तु या कृति की सम्यक् व्याख्या अथवा उसका मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है।

नित्य के व्यवहारिक जीवन में किसी न किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा कार्यकलाप की समीक्षा में हमारी सहज प्रवृत्ति होती है। किंतु संस्कारों, चिंतन क्षमता एवं सामाजिक अवधारणा और अन्य व्यक्तिगत विशेषताओं के परिणामस्वरूप हमारी प्रतिक्रियाओं में प्रायः अंतर रहता है। अब कुछ पाश्चात्य और भारतीय विचारकों के विचारों पर आते हैं-

'The two of problems What is good and what is arts retleet light upon on another Neither in fact can be fully answered without the other, To the unraveling of the firest we may now proced , The critic concers with value.'

I.kA.k.Richards

मूल्य की स्थिति का संदर्भ दोहरा है- कलागत मूल्य एवं सामाजिक मूल्य। कृति में निहित दोनों प्रकार के मूल्यों का विश्लेषण आलोचना का दायित्व है। किंतु इस पद्धति का दोष यह है कि, प्रत्येक कृति के पाठ में सर्जक निर्गुण ब्रह्म की तरह छिपा बैठा है- मूल्य तथा आस्वादन प्रक्रिया के संदर्भ में कृति में समाहित कृति के व्यक्तित्व की तलाश का पक्ष उपेक्षित ही होगा। "आलोचना आलोचक की कृति की व्याख्या न होकर उसी का पुनर्सृजन मात्र है।"

यह आलोचना आज जहां पहुंची है, वहां आलोचक को सर्जक मानने का क्रम प्रारंभ होता है। आलोचना की व्याख्या अपने युग से जुड़ती है। वहीं, कृति युग के बाहर प्रायः शाश्वत्

होती है। आलोचना के संबंध में डॉ. नगेन्द्र की मान्यता भी प्रायः प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी के समानान्तर ही दिखाई देता है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार ‘‘आलोचना काव्य का आख्यान है और यह आख्यान वस्तु विश्लेषण मात्र नहीं है, यहां भी, आख्यान शब्द पुनर्सजन का ही वाचक है। अन्यथा जीवन का आख्यान है, यह वाक्य अपना अर्थ ही खो बैठता। आलोचना के संदर्भ में भी आख्यान वस्तु विश्लेषण मात्र नहीं है- यहां भी पुनर्सजन की प्रक्रिया चलती है।’’

आज का आलोचक भी आलोचना के अंतर्गत प्रारंभिक स्तर पर सबसे पहले शब्दों की रचना विधि को बारीकी से समझता है। फिर कवि की कल्पना शक्ति से सृजित सूझ पर आल्हादित होता है। उसके बाद, काव्य की मूल संवेदना का भरपूर आस्वादन करता है तत्पश्चात् रचना के गूढ़ तात्पर्य का अन्वेषण कर के उसे लोक के लिए प्रकाशित करता है। बिना इन चरणों के वर्तमान युग में भी आलोचक के सामर्थ्य को स्वीकार करना संभव नहीं है।

आलोचना का अर्थ कृति विशेष का गुण-दोष की विवेचना करना है। आलोचना के अंतर्गत किसी कृति की विशेषताओं पर विचार करना उसकी उपलब्धियों एवं अभावों का मूल्यांकन करना है। रचना को समझने में पाठक की मदद करना भी आलोचक का दायित्व है। रचना के जीवंत लेखन के संबंध में हम सब बराबर का अनुभव करते रहे हैं कि, धीरे-धीरे आलोचना कार्य उस स्तर का नहीं रहा जिस स्तर का होना चाहिए था। अरस्तु, प्लेटो और भी अन्य विचारकों जैसा स्तर आज नहीं रह गया है। आज आलोचना के नाम पर लिखी जाने वाली पुस्तकों की बहुतायत उसी रूप की विकृतियों प्रतीत होती हैं। अगर साहित्य की बात करे तो साहित्य के मर्म को समझने वाली वास्तविक आलोचना के स्थान पर जिस शास्त्रभ्यासी जड़ता और शोध को प्रश्रय मिला है, वह जीवंत लेखन से न केवल कट गई है बल्कि उसके संदर्भ में एकदम अक्षम एवं असमर्थ भी साबित होती है। यह पिछले वर्षो के कुछ अपवादों को छोड़कर जो भी महत्वपूर्ण आलोचना कार्य हुआ है, वह सृजनशील लेखकों के द्वारा ही किया गया है।

वर्तमान संदर्भ में आलोचना उस कोटि की नहीं हो पा रही है जिस प्रकार की होनी चाहिए। आज के समय में अच्छे आलोचना लेखों की कमी है। नए आलोचक चुप हैं। अगर आलोचनात्मक लेख नहीं लिखें जाएंगें तो समाज की गति भी थम सी जाती है। आलोचना का कार्य वर्तमान को देखना और भविष्य की रूपरेखा को निर्धारित करना होता है। यह आलोचना समाज से जुड़ जाती है। आलोचना के बिना साहित्य मात्र दिखावटी रह जाता है।

वर्तमान में आलोचना कर्म कठिन हो गया है। जबकि, पहले हिंदी में शुद्ध व्यावहारिक आलोचना का सूत्रपात भारतेन्दु युग में गद्य के विकास के साथ-साथ दिखाई देता है। इसके पूर्व हिंदी आलोचना के जो रूप प्रचलित थे उसका श्रेय संस्कृत साहित्य को प्राप्त है। इनका क्रम हमें संस्कृत साहित्य से प्राप्त होता है। संस्कृत में सैद्धांतिक आलोचना के छह प्रमुख सिद्धांत प्रचलित थे रस, रीति, वक्रोति, ध्वनि अंलकार और औचित्य। हिंदी में इनमें से रस आदि का लक्षण और उनका उदाहरण प्रस्तुत करना कवि आचार्यों का प्रमुख उद्देश्य रहता है।

आलोचना के वर्तमान संदर्भ में कैरियर ऋणशोध और निहित स्वार्थों के लिए आलोचना के इस्तेमाल के कारण उसकी विश्वसनीयता का क्षरण हुआ है। लेकिन फिर भी वह प्रवृत्तियों, लेखकों और कृतियों की अपनी अचूक पहचान का विश्वास बनाए रख सकी है। इस दौर की आलोचना में एक ओर यदि कलावादी रूझानों की सक्रियता बढ़ी है, उसकी पुनर्स्थापना के प्रयासों में तेजी आई है। वहीं साहित्य से समाज शास्त्रीय अध्ययन का भी विकास हुआ है और साहित्य के समाज एवं राजनीति से अंतःसंबंधों को नए सिरे से परिभाषित करने के प्रयास भी स्पष्ट लक्षित किए जा सकते हैं। ‘‘हिंदी आलोचना में सिद्धांत-चर्चा, प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र की प्रासगिंकता की तलाश, उत्तरआधुनिकतावादी चिंतन और आंदोलन की सक्रियता के अतिरिक्त ‘हिंदी नवजागरण’ और ‘हिंदी जाति’ जैसी अवधारणाओं पर भी पर्याप्त विवाद होता रहा है। कुल मिलाकर हिंदी आलोचना असहमतियों के रहते

पर्याप्त उत्तेजक और थरथराहट भरा है। संभवतः इसी कारण आलोचना की तेजस्विता और उसकी संवादी प्रवृत्ति भी बनी रह सकी है।''

आलोचना में सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्ष होते है। ये दोनों अपने हिसाब से कार्य करते हैं। वर्तमान समय में साहित्य की विविध विधाओं की आलोचना के प्रकाश में आने के साथ ही आलोचना विधा में सक्रिय विद्वानों की संख्या भी तीव्र गति से बढ़ी है। यहां उन सभी का उल्लेख कर पाना भी संभव नहीं है, किंतु इतना अवश्य है कि, आलोचना के क्षेत्र-विस्तार का यह सुखद पक्ष है। नाटक और रंगमंच साहित्य गद्य की विविध विधाओं से जुड़े साहित्यकारों की हिंदी आलोचना में उपस्थिति ने विविधता का विचारों को फैलाव किया है। साहित्यिक पत्रिकाओं का योगदान भी हिंदी आलोचना के विकास में अभूतपूर्व है। सरस्वती, प्रतीक, आलोचना आदि पत्रिकाओं के बाद नये पत्ते, नयी कविता, निकष, पहल, दस्तावेज, पूर्वग्रह, और समास आदि पत्रिकाओं ने आलोचना को नए नवीन आयाम दिया है। "हिंदी आलोचना ने यों एक लंबी यात्रा की है। भारतेन्दु तथा प्रेमधन के साथ शास्त्रीय और गुणदोष कथन शैली से आरंभ करके आलोचना मिश्र बंधुओं के साथ निर्णयात्मक और पद्मासिंह शर्मा के साथ तुलनात्मक दौर में आती है। फिर रामचंद्र शुक्ल के माध्य से अपने व्याख्यात्मक- विवेचनात्मक रूप में एक बारगी वयस्क होकर वह विकास की कई नई दिशाओं के साथ उद्घाटित करती है। इसी क्रम में आगे अर्थ संवर्धन की या सर्जनात्मक भूमिका अपना कर अपने रूप में गुणात्मक परिवर्तन लाती है।''

हिंदी आलोचना के इस विस्तार और तथाकथित नई आलोचना को विश्वग्राम की अवधारणा के मानदण्ड पर खरा उतरते हुए भी अनुभूत किया जा सकता है। हिंदी आलोचना के भविष्य की दशा-दिशा का विवेचन करने के पूर्व आलोचना के वर्तमान आलोचना की प्रवृत्ति का मूल्यांकन करना समीचीन होगा। प्रगतिवादी आलोचना के बाद अस्तित्व में आई नई आलोचना में व्यक्तिवाद और पूँजीवाद की प्रबलता हैं। इस आलोचना में भारतीय काव्यशास्त्र लगभग पूर्णतः उपेक्षित हो गया है। वह पश्चिमी चिंतन और आलोचना पर पूर्णतः निर्भर है। "नई आलोचना ही नहीं, स्वातंत्र्योत्तर काल की नई लगभग संपूर्ण हिंदी आलोचना एक ओर पश्चिमी आलोचकों, दूसरी ओर अस्तित्ववाद, मानववाद, यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, प्रभाववाद, आधुनिकतावाद, उत्तर-आधुनिकतावाद, संरचनावाद इत्यादि वादों और तीसरी ओर 'नई आलोचना' नव अरस्तूवादी आलोचना, शैलीविज्ञान समाजशास्त्रीय आलोचना आदि पश्चिमी आलोचना पद्धतियों का लगभग पूर्णतः अनुसरण करने लग गई है।" पश्चिम के विचार और वस्तुओं का अनुकरण करना और पश्चात्य अन्धानुकरण में पड़कर अपने संसाधनों को गौण मानना आजकल की प्रवृत्ति बन गई है और आधुनिकता का, उत्तर-आधुनिकता का पर्याय बन गई है। हिंदी आलोचना के क्षेत्र में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि, आज के वैश्वीकृत समाज में आलोचना के पुराने मानदण्ड बहुत काम के सिद्ध नहीं हो सकते।

किसी भी आलोचना पद्धति का स्थिर और जड़ होना गतिशील साहित्य का अपरोधक होता हैं, लेकिन 'आलोचना के पुराने औजार बॉक्स' में कुछ उपकरण हो सकते हैं, जो थोड़े बहुत परिर्वतन के साथ भारतीय उत्तर-आधुनिक आलोचना को नया रूप दे सकने में समर्थ हों।

"हिंदी आलोचना के क्षेत्र में पुरानी पीढ़ी के आलोचकों की सक्रियता ही संप्रति दिखाई देती है। युवा पीढ़ी के आलोचकों की संख्या लगभग नहीं के बराबर है। उनकी उपस्थिति भी जो है, उन्हें आगे बढ़ने के पर्याप्त अवसर और संसाधन उपलब्ध नहीं हैं।"

दूसरी तरफ साहित्यिक अनुशासन और साहित्यिक लगाव की स्थिति भी अत्यंत दयनीय है। अखबारों में साहित्य के लिए जगह नहीं। पत्रकार और रचनात्मक संबंध पिछली सदी के पूर्वार्द्ध के बरसों में निर्मित हुआ था, वह पूरी तरह विघटित हो चुका है। उनके बीच अपाट्य खाई खुद गई है। अनियतकालीन पत्रिकाओं की बाढ़ वास्तविक सर्जक या आलोचकीय प्रतिभा की पहचान या

प्रतिष्ठा को सुनिश्चित करने में असमर्थ है। 'अपनी डफली अपना राग' वाला मुहावरा हू-ब-हू चरितार्थ हो रहा है। पश्चिमी साहित्य ने अतिवाद से बचते हुए साहित्य के अनुशासन को इस तरह से स्थापित किया है कि, उनका आलोचनाशास्त्र श्रेष्ठ विधा के रूप में विकसित हुआ। हिंदी में यह काम हुआ, किंतु बहुत बाद में और अत्यंत मंद गति से। वाद, विमर्श और समाजशास्त्रीय दर्शन की परिधियों को तोड़कर आलोचनाबोध के सर्वमान्य प्रादर्श के निर्माण की अधिक आवश्यकता वर्तमान में है। इस कमी के कारण साहित्य और पाठक के बीच की दूरी बढ़ती ही जा रही है। हालांकि इसका एक बड़ा कारण हिंदी भाषी क्षेत्रों में व्याप्त अशिक्षा बेजोरगारी गरीबी और ऐसी ही कई सामाजिक चीजें भी कारण हैं, इसके बावजूद आलोचना का जो कार्य है वह अनदेखा नहीं किया जा सकता। वर्तमान समय में साहित्य यदि सामान्य पाठक के लिए बोधगम्य नहीं होता तो इसका बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आलोचना पर है। साहित्य में बढ़ती हुई दुरूहता, दुर्बोधता, सूक्षमता, प्रतीकात्मकता और बिम्बविधान की प्रमुखता आदि के कारण आज का साहित्य विशेषतः गद्य सामान्य पाठक के लिए नहीं लांघे जाने वाला पर्वत का शिखर बनता जा रहा है। आलोचना उसकी सहायता नहीं कर रही। आलोचना में भी असाधारण शब्दों का प्रयोग बढता जा रहा है। पाठक के दो मन होना या भ्रमित होना आलोचना की विफलता मानी जाती है।

"वर्तमान आलोचना के साथ बहुत सारे साहित्यकार अपनी प्रसिद्धि के लिए चर्चा में बने रहने के लिए प्रायः उन बातों का जिक्र करते हैं जो साहित्य की मर्यादा के एकदम विपरीत होती है। इसके अतिरिक्त स्वयं को स्थापित करने के लिए दूसरे को अपमानित करने, लांछन लगाने की हद तक भी कई साहित्यकार और आलोचक पहुंच जाते हैं। मूल्यहीनता की यह स्थिति भी हिंदी आलोचना के वर्तमान और भविष्य के लिए खतरनाक साबित हो सकती है।"

हिंदी आलोचना अपने उद्भव के साथ ही साहित्य और समाज के बीच सेतु बनकर, साहित्य की स्वीकार्यता का मानदण्ड बनकर अपने दायित्वों का सम्यक् पालन करती रही है। हिंदी आलोचना के भविष्य को समृद्ध किया जा सकता है। हिंदी आलोचना के सफल, सार्थक भविष्य के लिए पुरानी पीढ़ी के आलोचकों द्वारा युवा आलोचकों को प्रोत्साहन देना और साधन उपलब्ध करना अपेक्षित है तो युवा आलोचकों को मूल्यहीनता, अनुशासनहीनता आदि चीजों से उपर उठकर पक्षपात रहित होकर आलोचना के दायित्व का निर्वहन करना होगा। इन प्रयासों के माध्यम से आलोचना के भविष्य की दिशा भटकाव से बचते उन्मुख होगी और आलोचना अपनी सार्थकता के साथ स्थापित हो सकेगी।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

डॉ. अमरनाथ.(2012). हिंदी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.

सिंह प्रताप योगेन्द्र. (2008). हिंदी आलोचनाः इतिहास और सिद्धान्त. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन.

मधुरेश. (2012). हिंदी आलोचना का विकास. नई दिल्लीः लोक भारती प्रकाशनचतुर्वेदी

डॉ. रामस्वरूप. (2002). हिंदी गद्यः विन्यास और विकास. नई दिल्लीः लोकभारती प्रकाशन.

संपादक डॉ. नगेन्द्र. (2011). हिंदी साहित्य का इतिहास. नोयडा (उ. प्र.): मयूर पेपर बैक्स.

शाह रमेश मित्रः एक, संपादक मिथिलेश्वर. (2003). बदलते परिप्रेक्ष्य में आलोचना की अपेक्षित भूमिका

वार्ष्णेय. डॉ. लक्ष्मीसागर. (1996). स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास. नई दिल्लीः राजपाल एंड संस

पाण्डेय. भवदेव, मित्रः एक, संपादक. मिथिलेश्वर. (2003). समकालीन आलोचना का दायित्व. अंक-1 वर्ष.

त्रिपाठी. डॉ. विश्वनाथ. (2007). हिंदी आलोचना. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन

अवस्थी. देवीशंकर. (2009). आलोचना का द्वंद. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन.

पालीवाल. कृष्णदत्त. (2014). हिंदी आलोचना समकालीन परिदृश्य. नई दिल्लीः सामयिक बुक्स.

चौहान कर्णसिंह . (2001). आलोचना के नए मान. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन.

पालीवाल सूरज.(2008). हिंदी में भूमण्डलीकरण का प्रभाव और प्रतिशोध. दिल्ली शाहदराः शिल्पायन प्रकाशन.

www.transframe.in ISSN 2455-0310

राज कुमार हिरानी

हम आज आपको एक ऐसे ही लड़के की कहानी बतायेंगे जो माया नगरी गया तो था सिनेमा की दुनिया का बेताज़ बादशाह बनने मगर किस्मत के फेर ने उसे बना दिया सिनेमा की दुनिया का महान निर्देशक।

प्रमोद कुमार पाण्डेय

बलिया

उत्तर प्रदेश

ये कहानी हैं नारंगी के लिए मशहूर मध्य भारत के शहर नागपुर में रहने वाले एक छोटे से लड़के की। जिसने अपने कालेज के दिनों में ही एक ख्वाब देखा था। एक ख्वाब जिसने उसकी रातों की नींद उड़ा रखी थी एक ख्वाब जिसे वो शिद्दत के साथ पूरा करना चाहता था। उसका ख्वाब था सिनेमा की माया नगरी का बेताज़ बादशाह बनने का। उस वक़्त माया नगरी को शायद ये पता भी नहीं था कि, उसकी किस्मत में एक ऐसा सितारा भी लिखा हैं जो उससे लगभग 700-800 किलो मीटर दूर बैठा उसी के सपने देख रहा हैं। हम आज आपको एक ऐसे ही लड़के की कहानी बतायेंगे जो माया नगरी गया तो था सिनेमा की दुनिया का बेताज़ बादशाह बनने मगर किस्मत के फेर ने उसे बना दिया सिनेमा की दुनिया का महान निर्देशक। ये कहानी उतनी ही वास्तविक हैं जितना कि, देश में लोकतंत्र का होना वास्तविक हैं। इस कहानी का मुख्य पात्र हैं राज कुमार हिरानी उर्फ़ राजू हिरानी।

राज कुमार हिरानी का जन्म , 20 नवम्बर सन 1962 नागपुर के एक सिंधी परिवार सुरेश हिरानी और शीला हिरानी के पुत्र के रूप मे हुआ। राजू हिरानी के पिता सुरेश हिरानी नागपुर शहर मे एक टाइपिंग संस्थान चलाते थे। भारत के विभाजन के वक्त हिरानी परिवार सिंध छोड़ हिंदुस्तान मे आ गया था। राजकुमार हिरानी की शिक्षा नागपुर के सेंट फ्रांसिस हाई स्कूल में हुई। शुरुआत मे राजकुमार हिरानी ने इंजीनियर या फिर डॉक्टर बनने को सोचा था लेकिन जब इनके नंबर अच्छे नहीं आए तो इन्होने कामर्स का सहारा लिया। लेकिन राजू का मन उसमे भी नहीं लगा और तीन साल लेक्चर अटेण्ड करने के बजाए रंगमंच मे लगे रहे। अंततः अपने पिता के कहने पर राजकुमार हिरानी ने भारतीय फ़िल्म तथा टेलीविज़न संस्थान पुणे मे दाखिला लिया और वहीं से शुरू हुआ राजू का फ़िल्म सफ़र।

चलिए हम आपको बताते हैं कि, कैसे कामर्स की पढाई करने वाला एक लड़का बन गया हिंदी सिनेमा की दुनिया का सबसे महान निर्देशक और कैसे दर्ज करवाया उसने अपना नाम सिनेमा के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों से।

कहते हैं कि, बालीवुड की दुनिया में हर शुक्रवार को बादशाह बदल जाते हैं, हर आने वाला शुक्रवार किसी के लिए घनघोर निराशा लाता हैं, तो किसी के लिए एक नया सवेरा। इसी दिन बहुत सारी उम्मीदों को एक साथ झटका मिलता हैं तो बहुत सारी उम्मीदों को एक ठंडी हवा का झोंका। चूंकि इसी दिन बॉलीवुड में फ़िल्में रिलीज़ होती हैं और अपनी अंतिम यात्रा शुरू करती हैं। पहले ही दिन यह तय हो जाता हैं कि, किस फ़िल्म की उम्र कितनी होगी। मगर अपनी इसी अंतिम यात्रा की शुरुआत को कुछ फ़िल्मी किरदार अपने अमरता के शिखर तक ले जाते हैं। और ऐसे ही चंद किरदारों में नाम आता हैं मुन्नाभाई का, सर्किट का और रैंचो का। आपने इन किरदारों को परदे पर खूब धमाल मचाते तो देखा होगा, मगर कम ही लोग जानते होंगे कि, इन किरदारों को असल में रचने वाला शख़्स हैं राज कुमार हिरानी उर्फ़ राजू हिरानी। फ़िल्म निर्देशक राजू हिरानी ने हालांकि अभी तक कुल चार ही फ़िल्में बनायीं हैं मगर मुन्नाभाई से लेकर रेंचो और अब पीके की अपार कामयाबी के बाद उनका नाम सिनेमा के सबसे महान निर्देशकों में शुमार हो गया हैं और साथ ही उन्हें हिंदी सिनेमा का सबसे ज्यादा बिकने वाला निर्देशक भी बताया जाने लगा हैं।

फ़िल्म निर्देशक राजू हिरानी बताते हैं कि, जो पीके हैं वह मेरे लिए सपना था कि, इस सबजेक्ट पर फ़िल्म बनानी चाहिए। अगर आप थ्री ईडियट को देखे तो उसकी थीम थी कि, सफलता के पीछे ना भागो। एक सेंस के पीछे भागिए तो सक्सेस अपने आप मिल जाएगी। अगर आपको बाल काटने में मजा आता हैं तो आप बाल काटिए क्योंकि आप इतने अच्छे बाल काटोगे कि, सब आएगे।

जैसा कि, राजू खुद कहते हैं कि, फ़िल्म पीके उनका सपना हैं लेकिन राजू हिरानी का ये सपना नींद वाला सपना नहीं हैं बल्कि ये वह सपना हैं जिसे उन्होंने अपने कॉलेज के दिनों में जागती आंखों से देखा था।

अस्सी के दशक का यह वह दौर था जब राजू हिरानी नागपुर के हिस्लाप कालेज में बी.काम की पढाई कर रहे थे। अपने बेटे का सुनहला सपना देखने वाले राजू हिरानी के मां-बाप उन्हें इंजीनियर या डाक्टर बनाना चाहते थे। मगर बारहवीं में कम मार्क्स आने की वजह से राजू हिरानी को कामर्स में पढाई करनी पड़ी।

फ़िल्म निर्देशक राजू हिरानी बताते हैं कि, क्लासेस होती थी सुबह 7 से 10.30 बजे तक। वह भी आधे लोग अटैंड नहीं किया करते थे। दिन भर खाली होता था उस दौरान मेरी मुलाकात नागपुर में कुछ लोगों से हुई जो थियेटर या प्ले किया करते थे। तो मैंने वह करना शुरु किया और उसमें इच्छा कुछ ज्यादा जागी, तो वह जीवन का एक हिस्सा बन गई।

कॉलेज की पढाई के दौरान करीब तीन साल तक राजू हिरानी ड्रामा खेलते रहे । स्क्रिप्ट लिखने से लेकर एक्टिंग और डायरेक्शन तक स्टेज पर नाटक की हर विद्या में उन्होंने खूब हाथ आजमाएं । ड्रामे का ये शौक देखते ही देखते जुनून में तब्दील हो गया । इसीलिए राजू का ज्यादातर वक्त अब ऐसे दोस्तों के बीच गुजरने लगा जो अभिनय के क्षेत्र में कुछ कर गुजरना चाहते थे । दिन मे अपने पिता के टाइपिंग इंस्टीट्यूट में बैठते थे लेकिन सूरज ढलते ही ड्रामा की रिहर्सल करने ऑडीटोरियम में पहुंच जाया करते थे। राजू हिरानी के स्कूल के दिनों के दोस्त देबाशीष नाहा बताते हैं कि, उनके सिर पर एक्टिंग का जुनून किस कदर सवार था।

राजू हिरानी के दोस्त डॉ देबाशीष नाहा बताते हैं कि, मैं मेडिकल कॉलेज में पढ़ता था और राजू हिल्स क्लब कॉलेज में पढ़ता था। मैं सदर में रहता था राजू छावनी में रहते थे तो हम लोगों का एक थियेटर ग्रुप था जिसका नाम था आवाज। उसमे कई दोस्त थे हम लोग स्टेज प्ले किया करते थे। रेडियो प्लेज किया करते थे। क्योंकि हमलोग स्टूडेंटस थे तो रिहर्सल कहां करनी है ये थोड़ी प्रोब्लम हुआ करती थी। तो बहुत बार हम राजू के घर में उनकी छत पर रिहर्सल किया करते थे। या फिर मैं उस समय मेडिकल कॉलेज की स्टूडेंटस यूनियन की कल्चर कमेटी का चेयरमेन था तो हम जो वहां ऑडिटोरियम हैं उसको यूज किया करते थे,चोरी-छुपे शाम को रात को जब क्लास खत्म हो तब गार्ड को थोड़ा सा पटाके हम वहां रिहर्सल करते।

राजू हिरानी के दोस्त संजय अरोरा बताते हैं कि, वह भी सामान्य विद्यार्थी था। जब वह ड्रामा ग्रुप से जुड़ा उसके बाद जो तरक्की हुई। उसके पिता और चाचा चाहते थे कि, वह चार्टेड अकाउंटेंट बने या टैक्स कन्सल्टेंट । लॉ कालेज में एडमिशन भी लिया उसने पर उसका दिल वहां था नहीं।

नागपुर के विजय नगर छावनी इलाके में राजू का बचपन गुजरा हैं। उनके ज्यादातर दोस्त आज भी उनके घर के आस-पास इसी मोहल्ले में रहते हैं। मध्यवर्गीय परिवार से आने वाले राजू के पिता नागपुर में ही एक छोटा सा टाइपिंग इंस्टीट्यूट चलाया करते थे। ये वह दौर था जब देश में टाइपराइटर की भारी मांग हुआ करती थी। कॉलेज के दिनों में राजू हिरानी भी अपने पिता के साथ टाइपराइटर बेचा करते थे। उन्होंने कैल्कुलेटर सुधारने का काम भी सीख रखा था। लेकिन टाइपराइटिंग के इस छोटे से धंधे को जमाने के लिए राजू के पिता सुरेश हिरानी को खूब पापड़ बेलने पड़े थे। और यही वजह थी कि, वह अपने बेटे के सपने पर अपने उस संघर्ष का साया तक नहीं पड़ने देना चाहते थे जो उन्होनें देश के विभाजन के दौरान झेला था।

राजू हिरानी के खानदान की ये कहानी उस दौर में शुरु होती हैं जब देश अंग्रेजों का गुलाम था। पाकिस्तान के सिंध प्रांत में नवाबशाह नाम के इलाके में राजू के पिता सुरेश हिरानी का जन्म हुआ था। राजू हिरानी बताते हैं कि, उनके पुरखे सिंध के दरिया-खानमरी गांव के जमींदार थे। उनके पुरखों का भरा - पूरा परिवार था और शानों शौकत की जिंदगी भी। लेकिन जब देश आजाद हुआ तो विस्थापित हुए हजारों परिवारों की तरह राजू हिरानी का परिवार भी शरणार्थी बन चुका था। 14 साल की उम्र में राजू के पिता को परिवार के साथ पलायन का दंश झेलना पड़ा। 1947 में जब पाकिस्तान बना तो राजू के पिता अपने दूसरे रिश्तेदारों के

साथ नवाबशाह से आगरा आ गए। लेकिन रोजगार की तलाश ने हिरानी परिवार को एक दूसरे शहर फिरोजाबाद तक पहुंचा दिया।

उत्तर प्रदेश का शहर फिरोजाबाद कांच की चूड़ियों के लिए मशहूर रहा हैं और यहीं राजू हिरानी के पिता सुरेश हिरानी कई सालों तक चूड़ी बनाने की फैक्ट्री में काम करते रहे। राजू हिरानी बताते हैं कि, आगरा में एक रिफ्यूजी कैंप था वहां कुछ वक्त रहे फिर फिरोजाबाद में चूड़ियों की फैक्ट्री में कई साल तक काम किया। वास्तव में अभी तक वह हमें चूड़ियां बनाने का तरीका बताते थे। कई साल वहां काम किया, फिर मुझे बताते हैं कि, आईसक्रीम बेची साईकिल पर रख कर उन्होंने कई साल। फिर उनकी एक सिस्टर थी नागपुर में । तो उन्होंने कहा यहां आ जाओ तो फिर वह नागपुर चले गए। और एक जनरल स्टोर में उन्होंने काम करना शुरु किया। तो मुझे लगता हैं उनका माइंड शुरु से प्रोग्रेसिव था। सुबह काम करते थे। शाम को नाइट स्कूल जाकर पढ़ते थे। फैमिली को भी देखा करते थे।

1950 के दशक में जब टाइप राइटर ने हिन्दुस्तान में अपनी जगह बनानी शुरू ही की थी कि, राजू हिरानी के पिता ने इस धंधे में अपना हाँथ आजमाने की कोशिश की। राजू हिरानी बताते हैं कि, उनके पिता ने कर्ज लेकर दो टाइपराइटर खरीदे थे जिनसे वह लोगों को टाइपिंग सिखाया करते थे। और इस तरह उन्होंने अपने टाइपिंग इंस्टीट्यूट की शुरुआत की थी जिसका नाम राजकुमार टाइपिंग इंस्टीट्यूट रखा गया था।

राजू हिरानी बताते हैं कि, लोग नागपुर में उनसे कहा करते थे कि, यार तुम्हारे डैड ने तुम्हारे नाम पर बिजनेस शुरू किया हैं, तो मैं मुस्कुरा कर उन्हें जवाब देता कि, मेरे नाम पर बिजनेस नहीं, बिजनेस के नाम पर मैं हूँ, दरअसल मैं तब पैदा भी नहीं हुआ था, और जब मैं पैदा हुआ तो पिता जी ने कहा इसका नाम राज कुमार रखेंगे। फिर धीरे धीरे पिता जी का टाइपिंग सिखाने का धंधा, टाइप राइटर और कैलकुलेटर बेचने में तब्दील हो गया। पिता जी का संघर्ष कम शिक्षा और बेहद कम पैसे में घर का गुजारा चलने के कारण ही बहुत व्यापक था। और यही कारण था कि, वो अपने बेटे को इंजिनियर या डाक्टर बनाना चाहते थे, जिससे जो दिन उन्होंने देखे हैं वो उनके बेटे को न देखना पड़े। मगर जब उनके पिता को पता चला कि, उनका बेटा तो कुछ और ही बनने का सपना संजो रहा हैं तो उन्होंने अपने सपनो को ताक पर रखकर अपने बेटे के सपने को अपना बना लिया।

फ़िल्म निर्देशक राजू हिरानी बताते हैं कि, थ्री इडियट्स में एक सीन हैं जहां माधवन अपने पिताजी के पास जाते हैं और कहते हैं मुझे इंजीनियर नहीं बनना वह सीन मेरी लाइफ में एकदम वैसे ही हुआ था। क्योंकि मैं इंजीनियर नहीं बन पाया तो चाचा जी वकील थे उन्होंने कहा तुम चार्टेड अकाउंट बन जाओ ये नया प्रोफेशन हैं और काफी लोग कर रहे हैं। तो मैंने उसकी फाउंडेशन क्लास अटैंड की और मुझे याद हैं फाउंडेशन कोर्स का पहला इंट्रेंस एक्जाम था तब मेरा बिल्कुल मन नहीं किया। मैंने कहा मुझे मजा नहीं आता, मुझे समझ नहीं आता अकाउंट्स-वकाउंट्स तो मुझे नहीं करना है। अब मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी कि, किससे जाकर कहूं। मुझे डर ये था कि, कही पिताजी से जाकर कहूंगा तो वह कहेंगे यार पहले इंजीनियरिंग नहीं हुई चार्टेड अकाउंटैंसी भी नहीं करनी हैं तो तुम करना क्या चाहते हो। पर मुझे बिल्कुल मजा नहीं आ रहा था कि, मुझे ये करना ही नहीं है।

फ़िल्म निर्देशक राजू हिरानी बताते हैं कि, उस वक्त डैड को लगता था कि, शायद यार ये एक्टर बनना चाहता हैं। तो मैं आया बॉम्बे तो उस वक्त प्राइवेट कोर्सेस हुआ करते थे। याद नहीं है कौन उन कोर्स को कन्डक्ट किया करता था। बहुत छोटे-छोटे हुआ करते थे। उसके बड़े एड आया करते थे फुल पेज पर तीन महीने का कोर्स है, छः महीने का कोर्स है। तो मैं मुंबई ट्रेन पकड़कर पहुंचा और मुझे याद है वह बुलाते थे कि, आपका इंटरव्यू होगा ऑडिशन होगा। तो मैं वहां गया इंटरव्यू दिया, ऑडिशन दिया बहुत लंबी लाइन लगी थी। फिर वे कहते थे कि, शाम को आपका रिजल्ट अनाउंस होगा तो हम शाम तक बैठे रहते थे, सारे लोग बैठे हुए थे और जो भी आया था सबको सेलेक्ट कर लिया था क्योंकि उनका तो व्यापार था। तो मुझे लगा कि, यह मामला ठीक नहीं है। यहां कोई एक्टिंग सीख नहीं पाएगा और कुछ नहीं हो पाएगा तो मैं वापस आ गया।

एक्टिंग की हरसत दिल में लिए जब राजू हिरानी मुंबई से घर वापस लौटे उस वक्त उनके कई दोस्त नागपुर मेडिकल कॉलेज में पढाई कर रहे थे। यही वजह थी कि, मेडिकल कॉलेज के हॉस्टल में राजू हिरानी का आना-जाना भी लगा रहता था। उन दिनों डॉक्टरी की पढाई कर रहे राजू के दोस्त बताते हैं कि, कॉलेज के उन दिनों में ही उनके दिमाग में वह आइडियाज भी पनपते थे जिसे बाद में उन्होने फ़िल्मी परदे पर खूबसूरती के साथ उतारा हैं।

राजू हिरानी के दोस्त डॉ. देबाशीष नाहा ने बताया कि, कॉलेज के बाद शाम को 7 के बाद हम लोग रिहर्सल किया करते थे तो वह रिहर्सल 7 से 9:30 तक होता था और मुझे भी एक रुम मिला था। वहां पर तो हम लोग बहुत टाइम स्पेन्ड किया करते थे। और अब जब मेरा क्लास नहीं चल रहा होता तो अनाटिमी का म्युजियम हैं कुछ इंटरेस्टिंग दिख गया तो थोड़ी देर वहां टाइम पास करके जो शायद नार्मल इंसान वहां न जा पाएं वहां हम लोग चले जाया करते थे। और स्टोरी सुनकर कि रैगिंग किस तरह होता हैं तो इन सब चीजो से थोड़े बहुत आइडिया हम लोगों को था।

फ़िल्म निर्देशक राजू हिरानी बताते हैं कि, नागपुर में मेरे काफी दोस्त थे जो मेडिकल में चले गए। तो मैं उनके हॉस्टल में चला जाया करता था। उनके साथ रहता था तो वहां मैंने बहुत मजेदार चीजें देखी अजीबो गरीब। एक स्टूडेंट सिगरेट पीता था और स्कल जैसे ऐशट्रे था तो मैंने पूछा अरे वाह कितना अच्छा हैं। मैंने कभी ऐसा स्कल की शेप मे एसट्रे नहीं देखा। तो उसने कहा रियल का स्कल हैं। तो मुझे यकीन नहीं हुआ कि, जिसमें ये सिगरेट बुझा रहा हैं वह कुछ साल पहले किसी का सर था। फिर एक दिन पोस्टमार्टम दिखाया उन्होंने तो मुझे बड़ा फैसिनेट वर्ल्ड लगा, मुझे हसी भी आ रही थी और ऐसी-2 चीजें हो रही थी लोग कॉरीडोर में सो रहे हैं उनके साथ रोना भी आ रहा था। चूंकि मैं प्ले करता था तो एक आदत थी डायरी में नोट करने की। तो मेडिकल कॉलेज से जुड़ी बहुत सारी चीजें मैंने नोट की।

राजू हिरानी खुद तो डॉक्टर नहीं बन सके लेकिन दोस्तों के साथ उनका ज्यादातर वक्त मेडिकल कॉलेज में ही गुजरने लगा था। उधर मुंबई से बैरंग लौटने के बाद से राजू का करियर भी अधर में लटका हुआ था। उन्हें अपनी मंजिल तो मालूम थी लेकिन वहां तक पहुंचने का कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ रहा था। और पिता का दिल ये जान गया था, तभी उन्होंने राजू हिरानी को फ़िल्म इन्सटीट्यूट नाम आफ इण्डिया जाने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि, अगर सिनेमा सीखना चाहते हो तो वहां जाकर सीखो। मैंने वहां अप्लाई किया और डायरेक्शन में अप्लाई किया मगर एडिमिशन नहीं हुआ फिर मुझसे किसी ने कहा कि, यहां लाखो लोग अप्लाई करते हैं और हर कोर्स की 8 सीट हुआ करती थी टोटल 32 सीट्स हुआ करता थी 4 कोर्स की। तो किसी ने कहा एडिटिंग में अप्लाई करो उसमे कम लोग करते हैं। तो मैंने कहा ये होती क्या है, उन्होंने कहा क्या करना हैं तुम्हे, एक बार एडमिशन ले लो चले जाना, और फिर डायरेक्शन कर लेना। तो मैंने एडिटिंग में अप्लाई किया और अगले साल मेरा एडमिशन हो गया। और यहीं से राजू हिरानी की ज़िन्दगी ने एक नई करवट ली। अब वो नागपुर की तंग गलियों से निकलकर जा पहुंचे फ़िल्म एंड टेलीविजन इंस्टीटयूट ऑफ इण्डिया। अब तक उनका हीरो बनने का सपना भी टूट चुका था अब वो फ़िल्में बनाना चाहते थे। मगर उन्हें यह भी पता नहीं था कि, जो राह अब वो चुन रहे हैं वो पिछली राह से भी ज्यादा दुखदाई है। मायानगरी उनके लिए कांटो की सेज लेकर तैयार थी। पुणे के फ़िल्म इंस्टीट्यूट में तीन साल पढाई करने के बाद जब राजू हिरानी आगे सफर के लिए तैयार हुए तो जैसे उनके पैरों तले से जमीन ही खिसक गई थी।

राजू हिरानी बताते हैं कि, हमारा एक वीडियो कोर्स होने वाला था उस वक्त वीडियो शुरु हुआ था। तो उन्होंने कहा था कि, कोर्स खत्म होने पर एक महीने का वीडियो कोर्स देंगे। ताकि आप वीडियो में भी काम कर सके। जब मैं कैंपस में घुसा तो काफी खाली-खाली था, छात्र ही नहीं दिख रहे थे। मैं अपने कमरे पर गया वहां ताला बदल गया था, मेरी चाबी नहीं लग रही थी। तो मैंने कहा हो क्या गया? तो उन्होंने कहा कोर्स खत्म हो गया सब लोग चले गए। तो मैंने कहा वीडियो कोर्स? तो कहता वह तो स्क्रैप हो गया, आपको चिट्ठी नहीं मिली। मैंने कहा नहीं मुझे तो कोई चिट्ठी नहीं मिली। मुझे गुस्सा आया कोर्स स्क्रैप हो गया हैं, मैं वहां खड़ा हूं जहां मै 3 साल रहा हूं। मेरा कोई दोस्त नहीं हैं कुछ नहीं हैं। मैं बैठा रहा पेड़ के नीचे पूरा दिन सोचता रहा कि, करना क्या है। तो दो चारे थे या तो नागपुर चले जाओ वापस या फिर बाम्बे चले जाओ। तो मैंने कुछ सामान पैक किया कुछ छोड़ा, एक बैग लेकर 11-11.30 पर बस ली और मैं बॉम्बे आ गया।

कहते हैं मुंबई सपनों का शहर हैं। ना जाने कितने सपने रोज मुंबई के दरवाजे पर दस्तक देते हैं। हर रोज सैकड़ों – हजारों लोग सुनहरे भविष्य की तलाश में मुंबई के रेलवे स्टेशन पर उतरते हैं। नागपुर के नौजवान राजू ने भी जब फ़िल्म डायरेक्टर बनने के सपने के साथ मुंबई में कदम रखे तो उसके सामने खड़ा था हकीकत का वह साया जिसने उसके सुनहरे सपनों को एक बारगी झकझोर के रख दिया था।

राजू हिरानी बताते हैं कि, बॉम्बे में एक दोस्त था श्री राम राघवन उसका घर था गोरेगांव में, तो मैं उसके घर पहुंचा सुबह 4 या 5 बजे। तो उसका 2 कमरे का घर था तो एक कमरे में वह खुद रहता था एक में मुझे घुसा दिया। वहां पर तीन लोग हमारे बैच के पहले से सोए हुए थे। मैंने भी चादर ली और सो गया। सोच रहा था कि, कल से क्या करना हैं। 5 बजे आया था, सोया था आधी नींद में था कि 7 बजे क्वाइन्स की आवाज आने लगी। उठ के देखा तो सारे बैठे हुए थे, इसके घर फोन नहीं था। तो नीचे एक पी सी ओ था और सबके हाथ में एक फ़िल्म डायरी थी जिसमे सबके नाम होते थे- डायरेक्टर, प्रोड्यूसर,एक्टर, साउंड रिकार्डिस्ट, एडिटर्स। तो जिस ब्रांच का था वह फोन करता था। मुझे ऐसा झटका लगा कि यार ये क्या हो रहा है?

मुंबई में अगले दिन राजू हिरानी के हाथ में भी वैसी ही डायरी मौजूद थी जिसमें बॉलीवुड के तमाम डायरेक्टर और प्रोड्यूसरों के नंबर मौजूद थे। रोज सुबह फोन में क्वाइन डालना और लोगों से काम मांगना राजू की जिंदगी का एक हिस्सा सा बन गया था। एक फ़िल्म स्टूडियों से लेकर दूसरे स्टूडियों तक काम की तलाश में भटकते हुए राजू के दिन एक एक कर गुजरने लगे। दिन महीनों में बदले और महीने साल में तब्दील हो गए। लेकिन जब कही ढंग का काम नहीं मिला तो थक हार के राजू हिरानी ने एक एडिटिंग स्टूडियों में नौकरी कर ली। और इस तरह मुंबई के हालात ने फ़िल्म डायरेक्टर की बजाए उन्हें बना दिया एक एडिटर।

राजू हिरानी बताते हैं कि, वहां एक एकता नाम का एडिटिंग हाउस हुआ करता था। उस टाइम सीरिएल बहुत एडिट हुआ करते थे, लोबैंड की मशीन होती थी, हर स्टूडियो में एक एडिटर हुआ करता था । फ्रीलांस एडिटर आते थे मगर हर स्टूडिओ एक एडिटर रखता था कि, अगर कोई आदमी बिना एडिटर के आता हैं तो वह एक रख सकता हैं, तो आपका काम होता था बुकिंग लो खाना ऑर्डर कर दो। तो वहां काम शुरु किया तो वहां काफी लोग आते थे तो उनके साथ बैठकर एडिट करता था,फिर जब लोगो के साथ काम किया तो वह हरदम बुलाने लगे। वहां मैंने 6 महीने काम किया फिर मुझे बहुत जल्दी काम मिलने लगा। उसके बाद 5 साल तक खूब एडिटिंग की टीवी सीरिएल भी किए। डाक्यूमेंट्री भी की एड भी की वीडियो जो मिलता था एडिट करता जाता था।

कहते हैं कि, मायानगरी मुंबई यहां किस्मत आजमाने वालों को फुटपाथ से उठाकर सीधे फाइव स्टार तक पहुंचाती रही हैं लेकिन कई सालों के संघर्ष के बाद भी जब मुंबई में राजू हिरानी के पैर नहीं जमें तो इस दौरान उन्होंने एक बार फिर अपने शहर नागपुर का भी रुख किया। विज्ञापन एजेंसी चलाने वाले राजू के बचपन के दोस्त संजय अरोरा को आज भी अच्छी तरह याद हैं कि, किस तरह घूस देकर राजू हिरानी ने महज तीन हजार रुपये में अपनी जिंदगी की पहली विज्ञापन फ़िल्म बनाई थी।

राजू हिरानी के दोस्त संजय अरोरा बताते हैं कि, उस समय नागपुर में एक ड्रिंक लॉन्च हुआ था किम्पो नाम का और हमें कहा गया कि, इसके लिए एक फ़िल्म बनाइए और 3 हजार रु का बजट था। उस समय तो राजू को मैंने कहा कि, ऐसे-2 प्रोजेक्ट मिला हैं। तो वह जस्ट आया था तो एक्साइटेड था फ़िल्म बनाने के बारे में तो उसने कहा ठीक हैं हम फ़िल्म बनाते हैं तो उसने एक वीडियो कैमरा हाइयर किया। सुबह 5.30-6 बजे हम लोग सैमनरी हील्स नागपुर में जो हैं वहां गए और जो टॉय ट्रेन के ट्रैक्स हैं जो जंगल से गुजरते हैं वहां पर हमने शूट किया। फिर ये पूरा शूट लेकर वह बॉम्बे गया। उसने बॉम्बे के एक स्टूडियो क्योंकि पैसे तो थे नहीं । 3 हजार में पूरा शूट करना था। तो उसने स्टूडियो के चपरासी को ब्राइब किया और साउंड का एडिटिंग मिक्सिंग उसने ब्राइब करके ऑवरनाईट किया रात में खुलवाके स्पेशली ।

राजू हिरानी बताते हैं कि, नागपुर में एक न्यूज पेपर हुआ करता था हितवाद अंग्रेजी। अभी भी हैं। तो उसने कहा एक कॉर्पोरेट फ़िल्म बना। मैंने कहा बनाऊंगा। उसने कहा 40,000 रु मिलेंगे, मैंने कहा बनाऊगा। तो स्क्रिप्ट लिखते थे सारे दोस्त अपने थे तो कहा बस इतने ही पैसे हैं। इक्विप्मेंट हायर कर लिए थे। तो जैसे तैसे 40,000 में भी हम फ़िल्म बना लेते थे तो ऐसा काम मैंने बहुत किया हैं। लोगों को लगा कि, ये कुछ कर सकता हैं तो उन्होने छोटी-2 एड फ़िल्म देनी शुरु की। तो मैंने कैनवस फ़िल्म नाम से एक प्रोडक्शन कंपनी बनाई और मैंने बहुत सारी विज्ञापन बनाई। ऐसा नहीं था कि, मैं डायरेक्शन नहीं कर रहा था। और स्क्रिप्ट लिखते रहता था।

एडवर्टाइजिंग और वीडियो एडिटिंग के बूते राजू हिरानी ने बॉलीवुड में अपनी राह बनानी शुरु कर दी थी। इसी दौरान उन्होंने कुछ फीचर फ़िल्म भी की जो आधी अधूरी ही डिब्बा बंद हो गई। साल गुजरते रहे और राजू की कलम से निकल कर वह अहसास आइडिए की शक्ल में कागज पर उतरते रहे जिन्हें उन्होनें मेडिकल कॉलेज के माहौल में महसूस किया था। लेकिन

बॉलीवुड में राजू का सितारा उस वक्त चमका जब उन्हें फ़िल्म प्रोड्यूसर विधु विनोद चोपड़ा ने फ़िल्म मिशन कश्मीर एडिट करने का मौका दिया।

राजू हिरानी बताते हैं कि, नागपुर से ही मैं मुन्नाभाई MBBS लिख रहा था। क्योंकि मेरे बहुत सारे दोस्त नागपुर मेडिकल में थे। मगर मुझे ये समझ नहीं आता था कि, किसे दिखाऊंगा कोई क्यों मेरे साथ फ़िल्म बनाएगा। एक ही तरीका हैं कि, अगर मैं किसी के पास बहुत अच्छा स्क्रिप्ट लेकर जाऊं तो ही कोई मेरे साथ फ़िल्म बनाएगा। क्योंकि मुझसे ये नहीं होता कि, उनके पीछे घुमों यारी दोस्ती करु क्योकिं मै ये नहीं कर सकता था। मैं लिख रहा था सालों से लेकिन मुझे लिखने का मोटिवेशन मिशन कश्मीर से मिला। मुझे बहुत मजा आया उसे एडिट करने में । फिर मैंने एक ब्रेक लिया काम से जो भी मैं कर रहा था। मैंने कहा 8 महीने मैं कुछ नहीं करुंगा बस स्क्रिप्ट लिखूंगा।

बॉलीवुड के उन दिनों को याद कर राजू हिरानी बताते हैं कि, करीब एक साल तक वह फ़िल्म मुन्नाभाई एमबीबीएस की स्क्रिप्ट लिखते रहे थे और जब स्क्रिप्ट तैयार हुई तो उनकी नजर में मुन्नाभाई के रोल के लिए पहली पसंद अनिल कपूर थे। इस रोल के लिए बात बॉलीवुड के बादशाह शाहरुख खान से भी चली थी। लेकिन मुन्नाभाई की खोज करते करते जब दो साल गुजर गए तो फ़िल्म के प्रोड्यूसर विधु विनोद चोपड़ा ने राजू को सुझाया संजय दत्त का नाम।

राजू हिरानी ने बताया कि, मैंने सोचा संजय दत्त। तो मुझे बड़ा अजीब लगा कि, मेरी फ़िल्म तो शाहरुख खान कर रहा था अब ये। पर कुछ रास्ता नहीं दिख रहा था तो मैंने संजय दत्त की फ़िल्म देखनी शुरु की। मैंने सोचा देखूं कैसा लगता हैं फिर मैंने वास्तव देखी तो वास्तव में मुझे उसका परफॉर्मेंस बहुत अच्छा लगा। क्योंकि मेरे रोल से मैच होता था। फिर मैंने चेकलिस्ट बनाई 81 सीन थे फ़िल्म में और बाजू में सब एक्टर के नाम लिखे और मैं आंख बंद करके सीन के बारे में सोचता था कि, ये एक्टर कैसा करेगा तो मैं थिंक करता जाता था। और फिर जब मैंने देखा था संजू बेहतरीन कर रहे थे। मुझे लगा ये हैं मुन्नाभाई हैं। इसके आगे और पीछे क्या हैं। इसकी शक्ल हैं बॉडी हैं भाई जैसे, इसकी आंखो से ये एक गोल्डन हर्टेड भाई लगता हैं। जो मुन्नाभाई हैं जो टफ भी हैं और अन्दर से सॉफ्ट भी हैं।

फ़िल्म मुन्नाभाई एमबीबीएस नागपुर के इसी मेडिकल कॉलेज से निकली हैं। राजू हिरानी बताते हैं कि, मेडिकल कॉलेज के माहौल में अपने दोस्तों के बीच उन्होंने जो कुछ देखा और महसूस किया उसी को अपनी फ़िल्म मुन्नाभाई एमबीबीएस के किरदार में ढाल दिया। मेडिकल की दुनिया में होने वाली कमीशनखोरी और मरीजों से धोखेबाजी की घटनाओं को राजू हिरानी ने बरसों अपने जहन में सहेजे रखा। पुणे के फ़िल्म इंस्टीट्यूट में जब राजू पढाई कर रहे थे उसी दौरान उन्होनें फ़िल्म मुन्नाभाई एमबीबीएस की स्क्रिप्ट लिखनी भी शुरु कर दी थी और उनके लेखन का ये सिलसिला उनके मुंबई आने के बाद भी सालों तक चलता रहा। लेकिन उन्हें अपनी बरसों की इस मेहनत का सिला तब मिला जब 2003 में आई फ़िल्म मुन्नाभाई एमबीबीएस ने बॉक्स ऑफिस पर धूम मचा दी।

राजू हिरानी बताते हैं कि, मेरे दोस्त डॉक्टर बन चुके थे तो मैंने देखना शुरु किया कि, मेडिकल फील्ड में वह कैसे भेजते हैं पैथालॉजिस्ट के पास कैसे कमीशन भेजते हैं और मैलप्रेक्टीसिस। तो काफी कुछ चीजें दिखाई देने लगी। तो मैंने बहुत हार्ड हैंटिंग स्क्रिप्ट लिखी। जो भाई किस्म का आदमी हैं तो फ़िल्म शुरु हुई कि, उसके सर में दर्द होता हैं और वह जाता हैं डॉक्टर के पास डॉक्टर उसे चेक करता हैं और पैथॉलॉजी टेस्ट के लिए भेज देता हैं। वहां से रिपोर्ट आती हैं कि, ये ठीक नहीं हैं वह ठीक नहीं हैं और उसे भेज देता हैं कॉफ्टोमोलॉजिक के पास आंख चेक करवाने के लिए। वह बेचारा दिन भर घूमता रहता हैं अगले दिन उसका सर दर्द अपने आप ठीक हो जाता हैं पता चलता हैं हैंग ऑवर था दारु ज्यादा पी ली है। तो उसे एहसास होता हैं कि, मेरे हैंगऑवर से इन लोगों ने कितने पैसे कमा लिए। मगर वह बड़ा हार्ड हैंटिंग स्टायर था। फिर कुछ दोस्तों को सुनाया फिर मुझे ऐसा लगा कि, मैं ज्यादा ब्रूटल हो रहा हूं डॉक्टर की तरफ, ऐसा नहीं हैं कि, सारे डॉक्टर ऐसे हैं बहुत से डॉक्टर अच्छे भी होते हैं। जिनको मैं जानता हूं। तो वह स्क्रिप्ट बदलते-बदलते उसने ये शेप लिया कि, अंडरवर्ल्ड डॉन बजाय वह डॉन ही रहा लेकिन मेडिकल कॉलेज में जाने का उसका मकसद बदल गया अब वह इसलिए जाना चाहता हैं क्योंकि उसका पिता की बेइज्जती हुई।

निर्देशक के तौर पर मुन्नाभाई एमबीबीएस राजू हिरानी की पहली फ़िल्म थी। इस फ़िल्म के तीन साल बाद राजू हिरानी ने

फ़िल्म लगे रहो मुन्नाभाई का निर्देशन भी किया। और उनकी इस फ़िल्म में भी मुन्नाभाई की गांधीगिरी ने जैसे दर्शकों के दिलों पर जादू कर दिया। दरअसल राजू हिरानी की फ़िल्म की ये खासियत रही हैं कि, उनके किरदार मिडिल क्लास हीरो होते हैं और फ़िल्म के सीन रोजमर्रा की जिंदगी की कहानी बयान करते नजर आते हैं यही वजह हैं कि, उनकी सारी फ़िल्म दर्शकों को अपने साथ जोड़े रखने में कामयाब रही हैं।

फ़िल्म लगे रहो मुन्ना भाई के स्क्रिप्ट लिखने से पूर्व राज कुमार हिरानी की मुलाक़ात उनके सहयोगी लेखक अभिजात जोशी से हो गयी थी। सिनेमा विशेषज्ञ अजय ब्रह्मात्मज लिखते हैं कि, अभिजात जोशी उनके सहयोगी लेखक हैं। 'लगे रहो मुन्नाभाई' से दोनों साथ आए। दोनों के बीच संयोग से मुलाकात हुई। 1992 में अयोध्या में घटना के बाद अहमदाबाद में हुए सांप्रदायिक दंगों के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने 'शैफ्ट ऑफ सनलाइट' नामक नाटक लिखा था। विधु विनोद चोपड़ा को इस नाटक के विषय ने प्रभावित किया था। उन्होंने अभिजात जोशी से मिलने में रुचि दिखाई थी। बाद में अभिजात जोशी ने विधु विनोद चोपड़ा के लिए लेखन आरंभ किया था। उसी दरम्यान एक बार राजकुमार हिरानी से उनकी संगत हुई। राजकुमार हिरानी 'लगे रहो मुन्नाभाई' की स्क्रिप्ट पर काम कर रहे थे। वे अपना ड्राफ्ट सुना रहे थे। अभिजात जोशी ने साथ में काम करने का प्रस्ताव रखा, जिसे राजकुमार हिरानी ने सहज रूप से स्वीकार नहीं किया। कुछ महीनों की मेलबाजी के बाद स्पष्ट समझदारी बनी। बाद में 'लगे रहो मुन्नाभाई' की स्क्रिप्ट में गांधी के विचारों का सार समेटने में अभिजात जोशी ने पूरी मेहनत की। उन्होंने गांधी वांगमय के साथ गांधी जी के सचिव महादेव देसाई की डायरी भी पढ़ी। उनके इनपुट से 'लगे रहो मुन्नाभाई' की स्क्रिप्ट समृद्ध और सारगर्भित हुई।

अभिजात जोशी और राजकुमार हिरानी का सहयोग चलता रहा। बीच में अभिजात जोशी अमेरिका वेस्टरविले ओहियो में पढ़ाने चले गए। उस दौरान दोनों के बीच ईमेल और फोन के जरिए निरंतर संपर्क रहता था। राजकुमार हिरानी ने एक इंटरव्यू में बताया था कि, दोनों फ़िल्म के मुख्य विषय और विचार को स्वतंत्र रूप से दृश्यों में विकसित करते हैं। वे अपना लिखा एक-दूसरे को भेजते हैं। सुझाव से उसमें परिष्कार करते हैं। लंबी बहस और बातचीत के बाद ही वे स्क्रिप्ट को अंतिम रूप देते हैं। उनकी इस कार्यशैली में कई अड़चनें आती थीं। लेकिन चूंकि सहयोग और समझदारी आला दर्जे की थी, इसलिए कभी कोई मनमुटाव या मतभेद नहीं हुआ।

राजू हिरानी बताते हैं कि, लगे रहो में एक सीन था जो लड़की मुन्ना को फोन करके कहती हैं मेरे डैड मुझे एक लड़के से मिला रहे हैं। तो मै कैसे डिसाइड करुं कि, वह मेरे लिए ठीक हैं। अब ये सीन बना तो इस सीन के बेसिस यहां से मिले कि, मैं जब भी अपने दोस्त के साथ होटल जाता था तो वे वेटर को शी शी करके बुलाता था तो मुझे बड़ा अजीब लगता था कि, ये एसे क्यों बुलाता हैं। तो इस तरह से लाइफ के सीन से फ़िल्म के सीन बन जाते हैं। राजू हिरानी के दोस्त डॉ. देबाशीष नाहा ने बताया की ये रैगिंग वाला जो कॉन्सेप्ट हैं यह सिर्फ मुन्नाभाई में ही नहीं 3 इडियट में भी डाला गया है। 3 इडियट में जो डाला गया हैं अब मैं मेनशन करता हूं कि, वह जो यूरीन करते हैं और वह जो इलेक्ट्रानिक कनेक्शन लगा रहता हैं ये सब इंजीनियर और मेडिकल कॉलेज में बहुत कॉमन चीजें हैं तो ये सब आइडिया वहां से आए हैं। फिर ये आप को याद होगा कि, 'मैं पढ़ रहा हूं ये अलग बात हैं लेकिन बाकी लोगों को पढ़ना नहीं चाहिए' तो ये हैं न हर किसी की रुम में उस समय बुक्स हुआ करती थी, वह लोग वह किताब पढ़ें ताकि उनका ध्यान डिस्ट्रैक्ट हो जाए और हम पढाई करे।

फ़िल्म मुन्नाभाई एमबीबीएस में डॉक्टर का किरदार निभा चुके राजू हिरानी के दोस्त देबाशीष नाहा बताते हैं कि, फ़िल्म बनाते वक्त राजू हिरानी सबसे ज्यादा स्क्रिप्ट पर ही ध्यान देते हैं। यही वजह हैं कि, उनकी फ़िल्म लंबे अंतराल के बाद परदे पर नजर आई हैं। मुन्नाभाई, लगे रहो मुन्नाभाई, थ्री इडीयट, और पीके पिछले बारह सालो में राजू हिरानी ने सिर्फ चार फ़िल्मों का ही निर्देशन किया हैं। राजू की एक खूबी ये भी हैं कि, वह अपनी फ़िल्मों के किरदार रीयल लाइफ से उठाते हैं और इस बात का भी खास ख्याल रखते हैं कि, फ़िल्म में हर कलाकार अपने किरदार में सौ फीसदी फिट बैठ सके। आम जिंदगी से जुड़े किरदारों को फ़िल्म के सांचे में ढालने वाले राजू हिरानी की कामयाबी का एक राज ये भी हैं कि, वे टाइपिंग इंस्टीट्यूट का अपना वह सबक आज भी नहीं भूले हैं कि, कामयाबी के पीछे मत भागो, काबिल बनो, कामयाबी खुद पीछे आएगी।

ISSN 2455-0310

समीक्षा

फ़िल्म - सनम तेरी कसम

आधुनिकता और परंपरा के बीच जूझती एक प्रेम कहानी

परंपरा, संस्कार और मर्यादा के बंधन से बंधी रहने वाली एक सहमी-सी लड़की... पढ़ी-लिखी और अच्छी नौकरी करने के बावजूद यह लड़की बंद गले का कॉटन सूट पहनती है... बिखरे बाल.... आंखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा...बस यही पहचान है सरस्वती उर्फ सरू पार्थसारथी (मावरा हॉकेन) की। सरू पापा की गुड गर्ल है पर फ्रेंड्स के लिए बहन जी। उसकी अपनी दुनिया है, अलग दायरा है... सरू को अपनी दुनिया कभी गलत नहीं लगती। फिर अचानक यह गुड गर्ल इतनी बुरी बन जाती है कि, सरू के पिता (मनीष चौधरी) जीते जी अपनी बेटी का पिंडदान कर देते हैं... आखिर क्यों ...? फ़िल्म की कहानी इस "क्यों " के जवाब तलाशने से शुरू होती है। वास्तव में राधिका राव, विनय सप्रू की फ़िल्म सनम तेरी कसम बाप-बेटी, बाप-बेटा,बहनों के बीच प्रेम, भावना, समर्पण और दुविधाओं का ताना-बना है। फ़िल्म दो पीढ़ियों के मूल्यों और संस्कारों के अंतर का फ़िल्मकन करती है।

सरू पर एक तरफ से उसके पिता के ब्राह्मणवादी विचारों का दबाव है तो दूसरी तरफ छोटी बहन की शादी में रोड़ा बनने का आरोप। इन दोनों दबावों से जूझती सरू की मुलाक़ात इंदर (हर्षवर्धन राणे) से होती है। उसी सोसाइटी में रहने वाला इंदर दिन-रात शराब पीता है और लड़कियां उसके घर आती-जाती हैं। सीधी-साधी सरू जब इंदर से मिलती है तो सोसाइटी में बवाल हो जाता है। बात इतनी बढ़ जाती है कि, जयराम को अपनी बेटी को घर से निकालना पड़ जाता है। बस यही से शुरुआत होती है एक प्रेम कहानी की। यह कहानी आगे बढ़ती है और अपने अंदर छुपे हुए कई राज खोलती है। इस प्रेम कहानी में प्यार के लिए तड़प, क़ुर्बानी, कशिश और जज़्बात है। फ़िल्म के कुछ दृश्य वाकई जज़्बाती बना देते हैं। पर यह जज़्बात परवान नहीं चढ़ता। जैसे-जैसे फ़िल्म खत्म होती है मोहब्बत का नशा काफ़ूर होने लगता है। अच्छे लोकेशन, सुरीले संगीत और अभिनय के बावजूद फ़िल्म कमज़ोर पड़ गई। कहानी में नयापन होने के बावजूद फ़िल्म की पटकथा बहुत ही भटकी हुई है। निर्देशक कई ट्विस्ट एंड टर्न्स के सहारे दर्शकों को बांधने की कोशिश भी करते हैं। यही वजह है कि, फ़िल्म का पहला हिस्सा ठीक-ठाक तरीके से गुजरता है मगर दूसरा भाग बहुत ही कमजोर पड़ जाता है। इमोशन दिखाने के चक्कर में निर्देशक ने ढेर सारा कंफ्यूजन भर दिया है। ढेर सारे ड्रामे भर गए और कई लंबे और गैरज़रूरी सीन डाल दिए हैं जिसकी वजह से फ़िल्म ज़रूरत से ज़्यादा लंबी और थोड़ी बोरिंग लगने लगती है।

> फ़िल्म सनम तेरी कसम बाप-बेटी, बाप-बेटा व बहनों के बीच प्रेम, भावना, समर्पण और दुविधाओं का ताना-बना है। फ़िल्म दो पीढ़ियों के मूल्यों और संस्कारों के अंतर का फ़िल्मकन करती है।

इस फ़िल्म के दो अलग-अलग पहलू हैं, जिन्हें लेकर निर्देशक जोड़ी राधिका-विनय ने एक दर्दभरी प्रेम कहानी को स्क्रीन पेश किया है। पहला पक्ष दर्शाता है कि, एक लड़की की केवल अपनी सादगी वाली लुक की वजह से शादी नहीं हो पा रही है। शादी-ब्याह के रिश्तों को आईटी और आईआईएम के चश्मे से देखने वाला समाज आज भी घोर रूढ़ीवादी है। दूसरा पक्ष ये कि, कोई परिजन अपने बच्चों को लेकर इतने कठोर कैसे हो सकते हैं। इतनी कठोरता आखिर किस कीमत पर। यह दुविधा फ़िल्म के अंतिम दृश्यों में बढ़ जाती है। यों लगता है कि, निर्देशक अंत सोच ही नहीं पा रहे हैं। थोड़ा यह और थोड़ा वह दिखाने के चक्कर में फ़िल्म का मर्म भी खत्म हो जाता है।

फ़िल्म की लीड जोड़ी हर्षवर्द्धन राणे और मावरा होकेन की यह लांचिंग फ़िल्म है। पूरी कोशिश

रूद्रभानु प्रताप सिंह
फ़िल्म समीक्षक
मुंबई

है कि, दोनों को परफारमेंस और अपनी खूबियां दिखाने के मौके मिलें। लेखक-निर्देशक ने इस जरूरत को ध्यान में रखते हुए दोनों को खूब मौका दिया है । दोनों कलाकारों ने भी इस मौके को भुनाया है और अच्छा अभिनय करने की पूरी कोशिश की है लेकिन फ़िल्म असरदार नहीं रह जाती। इंदर का किरदार आक्रोश से भरा है। वह कम बोलता है... धीरे बोलता है। ऐसा लगता है कि, उसमें बरसों से कुछ ऊबल रहा है। लेकिन ये ऊबाल अंत में भी शांत नहीं होता। ये इस किरदार के साथ नाइंसाफी-सा लगता है। हर्षवर्धन के लिहाज से यह किरदार उन पर भारी लगता है। इसके लिए कोई मंझा अभिनेता होता तो बेहतर रहता। मावरा, सुदंर हैं। वह पाकिस्तान की एक उभरती नायिका हैं। उनके अनगिनत चाहने वाले हैं। वह अभिनय तो ठीक-ठीक ही करती हैं, लेकिन उनकी आवाज उनका साथ नहीं देती। उनकी भरभराई-सी करने वाली आवाज पल पल में फरहान अख्तर की याद दिलाती है। फ़िल्म का गीत-संगीत अच्छा है। तू खींच मेरी फोटो... सरीखे गीत माहौल में थिरकन पैदा करने वाले हैं। कई अन्य गीत भी पार्श्व में या फिर सीन्स के साथ मैच करते हैं। पर ये सब एक लव स्टोरी के लिए नाकाफी-सा लगता है।

www.transframe.in ISSN 2455-0310

दिल जुदा है 'लवशुदा'

निर्देशक-लेखक-पटकथा : वैभव मिश्रा
संवाद : हुसैन दलाल
सितारे: गिरीशकुमार, नवनीत कौर ढिल्लन, टिस्का चोपड़ा
निर्माता : विजय गलानी
संगीत : मिथुन, परिचय
गीत : सईद कादरी, कुमार, मनोज यादव, परिचय

मोहब्बत के लिबास में लिपटी प्रेम कहानियां बॉक्स ऑफिस पर दस्तक दे रही हैं। फ़िल्म रिलीज होने के बाद दर्शकों की जुबान पर मोहब्बत के गाने तो चढ़ते हैं पर कहानी दिल को नहीं छू पा रही है। 'लवशुदा' भी इसी सिलसिले को आगे बढ़ा रही है।

बॉलीवुड में आजकल लव सीजन चल रहा है। सिलवर स्क्रीन पर मोहब्त की खुमारी छाई हुई है। दरअसल यह सिलसिला पिछले कई हफ्तों से जारी है। मोहब्बत के लिबास में लिपटी प्रेम कहानियां बॉक्स ऑफिस पर दस्तक दे रही हैं और बसंत के मौसम को खुशनुमा बनाने की पूरी कोशिश कर रही हैं। 'सनम तेरी कसम', 'सनम रे','फितूर' , 'इश्क फोरएवर', 'डायरेक्ट इश्क', 'लव शगुन' और 'लखनवी इश्क़' के बाद रिलीज हुई 'लवशुदा' इसी कोशिश का एक हिस्सा है। कोशिश इसलिए क्योंकि इतनी बड़ी तादात रिलीज होने के बावजूद अब तक कोई भी लव स्टोरी दर्शकों के जेहन में अपनी छाप नहीं छोड़ पाई है। फ़िल्म रिलीज होने के बाद दर्शकों की जुबान पर मोहब्बत के गाने तो चढ़ते हैं पर कहानी दिल को नहीं छू पा रही है। 'लवशुदा' भी इसी सिलसिले को आगे बढ़ा रही है।

अमूमन एक बॉलीवुडिया प्रेम कहानी 'ना ना करते प्यार हाय मैं कर गई' के फार्मूले पर आगे बढ़ती है।'लवशुदा' भी इसी सूत्र पर आगे बढ़ती है। इंटरवल के पहले हीरो प्यार को लेकर ना ना करते-करते हां कहता है और इंटरवल के बाद हीरोइन। फ़िल्म की कहानी एक वन नाइट स्टैंड से शुरू होती है। फ़िल्म की शुरुआत देखकर जो रोमांच बनाता है वो कहानी के आगे बढ़ाने के साथ ही साथ फीका-सा पड़ने लगता है। फ़िल्म हीरो और हीरोइन की एक दिलचस्प मुलाकात के साथ शुरू होती है और दर्शकों की दिलचस्पी बढ़ जाती है। एक बैचलर पार्टी में गौरव (गिरीश कुमार) की पूजा (नवनीत कौर ढिल्लन) से मुलाकात एक बिस्तर पर होती है। अगले दिन जब गौरव की आंख खुलती है तो बगल में बिस्तर पर एक युवती लेटी होती है। गौरव, उस लड़की को नहीं जानता। बीती रात क्या हुआ उसे कुछ नहीं पता। वह कुछ सोच समझ पाए इससे पहले दरवाजे पर दस्तक होती है। गौरव आनन-फानन में उस लड़की को वहां से भगा देता है। जाते-जाते वह लड़की गौरव की एक शर्ट पहन कर चली जाती है। बाद में गौरव को अहसास होता है कि, वो शर्ट तो उसकी होने वाली सास ने उसके लिए भेजी थी। उसे हर हाल में वो शर्ट चाहिये।

अपने दोस्तों के साथ वह उस लड़की को ढूंढने निकल पड़ता है। काफी मशक्कत के बाद उन्हें वो लड़की मिल जाती है। पूजा नाम की इस लड़की से मिलते ही गौरव को कुछ अलग-सा अहसास होता है। लेकिन ये अहसास प्यार में नहीं बदल पाता। गौरव की शादी हो जाती है। समय बीतता है और एक दिन ऐसा आता है कि, गौरव का वंदना से तलाक हो जाता है। चार साल बाद एक दिन अचानक गौरव की मुलाकात पूजा से होती है। वह पूजा को अपने दिल की बात बताता है, लेकिन अब पूजा की भी शादी होने वाली है। पूजा खुद को उसी मोड़ पर पाती है,जहां साल पहले गौरव खड़ा था। कभी हां, कभी ना करते-करते कहानी अपने अंजाम तक पहुंचती है। फ़िल्म में मोटे तौर पर दो-तीन बातें कहने की कोशिश की गयी है। पहली तो ये कि, सबको खुश रखने के चक्कर में कई बार इंसान जीवनभर दुखी रहता है। वो अपने दिल की कभी सुन ही नहीं पाता। एक बात ये भी कि, जब जो पल अपने प्यार के अहसास के लिए आवाज दे तो उस पल को जी लेना चाहिये। देर नहीं करनी चाहिए। और दिल की आवाज सुनने में तो बिल्कुल भी नहीं।

फ़िल्म की कहानी और स्क्रीनप्ले खुद डायरेक्टर वैभव मिश्रा ने ही लिखी है।

रूद्रभानु प्रताप सिंह
फ़िल्म समीक्षक
मुंबई

इंटरवल से पहले तक तो फ़िल्म में सब कुछ ठीकठाक-सा नजर आ रहा था लेकिन एक वक्त के बाद जबरदस्ती और कहानी खिंचती दिखाई देने लगती है। मिलना, बिछड़ना, फिर मिलना और फिर टिपिकल हिंदी फ़िल्म के जैसे इश्क का पनपना। इतना लव ड्रामा पचा पाना काफी मुश्किल है। फ़िल्म की शुरुआत तो अच्छी थी लेकिन बाद में झेल पाना काफी मुश्किल हो जाता है। फ़िल्म की कहानी कई बार अंग्रेजी फ़िल्म 'हैंगओवर' की याद दिलाती है। ऐसा कई बार लगता है कि, फ़िल्म उसी लीक पर चल रही है पर इंटरवल के बाद बहुत ज्यादा खिंची हुई लगती है। संवाद बेहद कमजोर हैं और पटकथा भी। अमूमन हर प्रेम कहानी कुछ ही बातों से घिरी रहती है। तो फ़िल्म 'लवशुदा' इनसे अलग कैसे हुई। बेशक, इस फ़िल्म में कोई नई बात नहीं है। कुछ अलग-सा दिखने वाला भी नहीं है। युवाओं के लिए बनाई गई इस फ़िल्म में दिखाने की कोशिश की गई है कि, दिल की सुनो, अपने लिए भी जियो। फ़िल्म की खूबसूरती यह है कि, इसकी कहानी में थोड़ा नयापन है। लेकिन फ़िल्म के साथ प्रॉब्लम इतनी है कि, इसके इमोशनल सीन दिल को नहीं छू पाते,जबकि लव स्टोरी की जान होते हैं इमोशनल सीन। या फिर यूं कहें की जज्बाती करने वाले दृश्यों पर कलाकार खरे नहीं उतरे। दूसरे भाग में फ़िल्म लंबी लगने लगती है। गिरीश कुमार की सकुचाती एक्टिंग कहीं कहीं ठीक लगती है। लेकिन एक मुक्कमल कलाकार के तौर पर उभरने में उन्हें काफी वक्त लगेगा। गिरीश के सामने नए अभिनेता नवीन कस्तूरिया ने काफी अच्छा अभिनय किया है। कुनाल का उनका किरदार फ़िल्म को लाइट बनाने में सहायक नजर आता है। सचिन खेडेकर ने पिता के रूप में अच्छा काम किया है। नवनीत कौर ढिल्लन आकर्षक हैं, लेकिन उनके साथ भी वही अभिनय वाली दिक्कत है। वह अभिनय करती दिखती तो नहीं। इसके अलावा फ़िल्म की सबसे अहम बात यह है कि, इसकी कहानी सुनने में तो अच्छी लगती है। इसका कॉन्सेप्ट भी अपील करता है, लेकिन परदे पर यह केवल एक चमक-दमक वाली कहानी लगती है, जिसे क्लब-पार्टी सॉन्ग्स से सजाकर पेश किया गया है। पार्टी के एक जैसे दिखने वाले तीन गीतों ने फ़िल्म को अनावश्यक ही लंबा बना दिया है और प्यार का सिलसिला जो इंटरवल के पहले तक लोगों को बांधे रखता है बाद में बोर करने लगता है।

www.transframe.in ISSN 2455-0310

TRANSLATION AS A BRIDGE IN THE 21ST CENTURY

The paper discusses how translation functions and will function as a bridge to promote in-depth dialogue and development and how lack of translation creates misunderstanding and misconception among masses .

Yugeshwar Sah

Translator

Ministry of Commerce

Udyog Bhawan, New Delhi

Contact No. 09560990944

Email:- yugeshwar.sah@gmail.com

Abstract

21st century era is an era of translation. "Every act of communication is an act of translation" (If This Be Treason by Gregory Rabassa). Translation is a bridge across various communities, countries and continents and it creates such a condition where cultural and commercial, social and political dialogue can be established and promoted to resolve the age-old conflicts, contradictions and differences. It breaks the culture of silence and builds the culture of dialogue which is essential to cultural development, political progress and bilateral relations in this age of globalization. Translation bridges social, economic, cultural and linguistic gaps which separate us from one another.

Language, Literature and culture can play very significant role in promoting international dialogue. Cultural and linguistic awareness can well be disseminated through the translation of literary texts. The study of translated literary texts roots out cultural and linguistic prejudices and biases and helps us to understand one another better. Cultural and linguistic differences hamper the prospects of bi-lateral dialogue and economic relations. Translation enables us to go beyond these barriers and expand, establish and strengthen international dialogue and bi-lateral relations for the development of all nations and for the welfare of whole humanity. If world literature will be translated into Indian languages and vice-versa then we can understand the culture and society properly and in this way we can come closer to one another to enhance and enrich cultural and political dialogue and to promote bi-lateral relations.

This paper attempts to explore the prospects and significance of translation to strengthen and promote cultural development and bi-lateral relations. It emphasizes on how translation helps us to change our prejudiced and biased mindset and see the other nations with friendly perspective. It also reflects on why we need translation and role and relevance of translation in the 21st century. The paper discusses how translation functions and will function as a bridge to promote in-depth dialogue and development and how lack of translation creates misunderstanding and misconception among masses which may hamper socio-cultural relations and global dialogue. The paper also tries to examine how translation of world literature into Indian languages and vice-versa can expand our academic engagement and interactive prospects at the level of higher education to encourage mutual understanding pertaining to language, literature, culture and society. The

effort has been made to explore the problems and prospects of establishing department of Translation Studies separately in Indian universities and to launch UG, PG M.Phil. and Ph.D. courses as we have these courses in foreign languages department to strengthen the project of nation building. So we would have translated world literature from all corners across globe in our syllabus at institutional level. Commercial investment and trade agreement cannot be very well successful and durable without cultural transaction and cultural dialogue and they are only possible through the translation of world literature into Indian languages and vice-versa and its promotion in higher education. The paper seeks to explore how translation opens new doors of employment opportunity for young promising students, scholars and academicians in an era of globalization.

Keywords: Translation, bridge, dialogue and development, cultural understanding, world literature, knowledge, globalization.

Role and Relevance of Translation

The term translation has been derived from the Latin word “translatum” which is made up of two segments – ‘Trans’ i.e. ‘beyond’, ‘through’, ‘across’ and “latum” means ‘to carry’. Thus the term translation refers to taking/carrying something beyond or across. According to Nida “translating, consists in producing in the message of the source language, first in meaning and second in style”. Translation is such a medium through which we can travel the whole world sitting in our home “*Yatra Vishwam Bhawati, Ek neeram*” (qtd in Agarwal, 1999, p. 15) and it makes us realize *“Vasudhaiv Kutumbakam”* (the whole world is my family). Translation plays a key role in national unity and cultural integration and it is true in the case of India.

Nothing moves without translation (E.S. Bates) in the 21st century. What belongs to nobody, belongs to everybody. No man's area becomes everyman's area. 21st century era is an era of translation because it is an era of knowledge. Translation pervades the whole human history and the entire world. Gregory rightly says "Every act of communication is an act of translation". Every word we utter is a translation of ideas, images and experiences. Where there is word there is translation. Words determine, illustrate and illumine our world. Bhartrihari rightly said "Jagat sarvam shabden bhashte" (We get the cognizance of the world through words) (quoted in Singh: 2014). There is no world without words and without word we can't share and disseminate the inexhaustible source of knowledge. Translation is to know the best that has been said and thought in the world. The knowledge text is written almost in 7000 thousand language of the world. There are more than two hundred members in UNO but there are only six official languages i.e. English, French, Spanish, Russian, Chinese and Arbi. So without translation we cannot disseminate and democratize the information to all in all languages. "No language, no nation is sufficient onto itself. Its mind must be enlarged by the thoughts of other nations or else it will warp and shrivel. In English in other language, many of the greatest ideas we have been brought in through translation. The central book of the English speaking peoples is a translation – although it comes to us as a shock to many to realize that the Bible was written in Hebrew and in Greek, and translated by a committee of scholars". (Highet, 1994: 106). So it can be said that "Jagatsarvam anuvaden bhashte" (we get the cognigence of the world through translation) (quoted in Singh 2014) in the 21st century. No human activity is possible without translation. Whenever and wherever we use/utter a word there is

translation. We translate abstract ideas into language through words. Words construct/make language, language creates knowledge and this knowledge is acquired, preserved, created, disseminated and applied in the world through translation. Translation makes this 'knowledge century' conceivable intelligible, perceivable and perceptible.

Translation as a Bridge

"Ati apar je saritbar, jo nrip setu karahin,

Chadhi pipeelakau param sukh bin kshram parahi jahin."

(quoted in Verma)

(If the king builds the bridge across the river then even an ant crosses the vast river without any difficulty.)

Tulsidas's couplet from the Ramcharitramanas highlights the role of translator and the relevance of translation in contemporary times. Translation is a bridge between two languages, two nations and two cultures of the world. Without translation man will be a stranger or an alien in his own community, country and continent. "India is perhaps the one country, where the citizens visiting a neighbouring state become foreigners in their own land. On the other hand, Indian currency is the only currency in the world to be inscribed with multiple languages" (Ravi 2012:12).

Translation functions as a bridge across different linguistic groups, across numerous cultures, communities, countries and continents, across various caste, colours, and creeds. According to Prof. Avadesh Kumar Singh, "It offers itself as a bridge across different cultures and their knowledge systems and their five basic aspects: acquisition of knowledge, preservation of knowledge, creation of knowledge, dissemination of knowledge and application of knowledge". (Singh 2014: 06).

Tagore's poem also emphasizes on the function of translation as a bridge.

"Thou hast made me known to friends when I know not, Thou hast given me seats in homes not my own, Thou hast brought the distant near and made a brother of stranger…"

Translation makes me familiar and friendly with the stranger and brings the distant very close to us, makes this world a global village in this 21st century and we can easily realize the philosophy of Vasudhaiv Kutumbakam (the whole world is my family). In the country like India where there is so much differences, divides and diversities such as lingual, cultural, religious. We are / will be strangers and alien in our own community and country without translation India is a diverse land where human happiness, hope and harmony rests on translation. The question arises that what will integrate unite and bridge all the gaps, gulfs and groups and let us breathes the fresh air in an era of knowledge? It is only translation which has capacity to create the culture of clarity, comprehension, unity, amity, friendliness, togetherness and deconstruct the culture of chaos, confusion, clash, conflict, collision, chasm, age-old prejudices and biases, doubts, disbeliefs, discrimination and differentiations. Translation serves as a bridge where

dialogue and development, peace and prosperity, education and employment can go hand in hand.

We need translation in the 21st century because it is needed for the democratization of knowledge, making our society "a knowledge society and to uplift the society. Translation is needed to know our nation deeper and better. to establish peace and non-violence, to make developing nation, a developed nation and to build the culture of dialogue amongst us. It is also needed to expand the horizons of our knowledge, to make man a superman, to make country, a continent, to convert illiterate and uneducated society into a knowledge society, to make poor nation, a prosperous nation, to transform “mere thinkers” into “man thinking” (Emerson), to awaken sleeping masses, to enlighten the ignorant masses. It is also needed at the international forum to strengthen bi-lateral relations and economic ties, to enhance socio-economic development, to root out racial, cultural, religious and linguistic prejudices and biases, to resolve age-old conflicts and contradictions, to bridge the linguistic gap that divides our society and nation. Translation is a must for nation building, global brotherhood, universal hope and harmony. And the translation of the Bible, the Gita, the Quran has brought peace, prosperity, hope, happiness and harmony in the whole world.

Translation is one of the effective media to extract the best from all cultures and to impart it at school, college and university level. Bhabha asserts that “Translation is the performative nature of cultural communication” (Bhabha, 1994:228). Translation is perceived as a cultural activity and has become a respectable profession. “One does not translate language but cultures” and "in translation we transfer cultures not languages” (House, 2002:92). Jhumpa Lahri also emphasizes that “translation is not only a finite linguistic act but an ongoing cultural one.” (Lahri 120). Now like English language, translation is the need of the time. It has become our social, cultural, commercial, professional and above all it is our global need. Like Internet it connects us with the knowledge of the whole world.

Without translation we will have limited and narrow knowledge and information because language puts limit and becomes a barrier in gaining knowledge from diverse domains of language, cultural and literature. No one can learn all the languages of the world, therefore it is said that “The limits of language are the limits of knowledge” (Wittgenstein). But we have challenged these limits and barriers which have been put upon us since ages with the help of powerful weapon called translation.

Teaching of Translated Texts

Every act of teaching is an act of translation and translation is central to teaching because teaching is "an act of interpretation", explanation. Teaching of translated text can create a powerful bridge across different and diverse social, lingual, political and cultural groups and all can thrive together and can commence a new era.

But teaching translated texts is considered to be peripheral or initiative kind of teaching. We study and teach translated texts as original of foreign authors but hesitate to teach translated text of Indian works.

We have received/are receiving the knowledge of world’s greatest literature through translation. The translation of the Bible, the Gita, the Mahabharata, the Ramayana, the Vedas, the Upnishadas, the Gita, Panchtantra etc. has revolutionized the whole world and history is a witness that translation of the

Bible has played a crucial role in spreading Christianity. We have been reading the greatest writers of the world in translation such as Socrates, Aristotle, Plato, Kalidas, Tagore, Tulsi, Tolstoy Dante, Petnarch, Virgil, Horace, Cicero etc.... and it is a long list. "Classical influence flows into the literature of modern nations by three ways- translation, imitation, and emulation." (Highet, 1949: 104). Had Indian sacred texts such as the Vedas, the Upanishads, the Gita been not translated then India would not have emerged as a spiritual leader across the globe. The Gita has been translated in many languages and many times in the same language after the Bible.

"In view of it, if we focus on Indian situation, we find that English classroom is a site of teaching through translation. In reality too we have been teaching much of translated texts but we have never noticed them. The literary criticism paper, for instance, is basically constituted of no-English texts. Plato, Aristotle did not write in English but in Greek. The works of Horace, Cicero and Quintilian are in Latin, which were later translated into English. Later on A.W. Schlegal, AC Schlegal and Schiller wrote in German, not ion English. Ferdinand de Saussure, Claude Levi-Strauss, Roland Barthes, Jacques Derrida, Michel Foucault, Jean Francois Lyotart and Pierre Bouriard did not write in English but they are being prescribed and taught in English class-rooms. But nobody questions the issues of their originality nor equips ourselves with new strategies to teach them as translated texts. Why are all these questions raised in case of teaching translated texts in Indian class room? The reason is in the mind-set because these texts happen to be translations of Indian works" (quoted in Singh: 29).

In order to maintain the integrity and unity of Indian the need of the our is to pose the studying / teaching translated texts at school, college and university level and also there is a need to establish the department of Translation Studies with the cases such as B.A., M.A., M.Phil. and Ph.D. in translation studies. This will also enable and expand academic engagement and interactive prospects at the level of higher education to encourage mutual understanding pertaining to language, literature, culture and society. Translation Studies has immense potential in our multilingual society. Translation Studied has emerged as a major discourse in the diverse country like India.

Translation and Employment

There is immense potential and prospect of translation in India as it has been an age-old practical ground of all forms of translation. There is huge job / employment opportunity in India. English is the second official language along with Hindi in India. So the translations are needed to all the central government and state government offices. Apart from it, the employment opportunity is in the court, railway, university and many other government institutions and organizations. There is also job opportunity in the field of interpretation. Interpretations are needed in tourism, in Lok Sabha, Rajya Sabha, meeting with foreign delegates, UNO etc.

Translation creates employment opportunity in the private sectors such multinational companies, publication house, media, mass communication, translation of literary texts, non-literary texts, facebook, dubbing, subtitling, google etc. There is very urgent need of translation of knowledge texts in all the major regional languages of India and NTM (National Translation Mission) is engaged in this pursuit of democratization and dissemination of knowledge.

Without cultural, linguistic and knowledge transaction, commercial investment and trade ties will not be durable because all relations, treaties and ties are based on understanding and translation would help us to understand one another profoundly.

Translation of world literature only will not help us to achieve our desired goal, therefore, we have to also pay attention to the translation of knowledge texts i.e. philosophy, sociology, science, psychology, education etc. which will instill into us with valuable knowledge and enable us to comprehend the social processes and philosophical thoughts cropping up in the societies. We also need to focus on the translation of music and cinema which will have enduring impact on the minds of the people of both the nations. The poorest of the poor and the commonest of the common people have access to music and cinema. Even the illiterate and uneducated those who cannot read or write, but listen, watch and understand message inherent in the music and cinema. Films and movies are the reflection of society's culture and social problems and prospects. So, they would help us to comprehend social perspectives and correct social and cultural problems. There is a great scope of translation in this field which will lead to socio-economic development and boost bi-lateral relations.

There are three activities from which nations can be developed "War to expand their territory, commerce to accumulate wealth and expand their economic activities and translation to expand their cultural, artistic and economic productions." (Nyongwa, 2012:34)

Conclusion

The progress of the nation and refinement of culture are centered on the axis of translation. No country can progress or develop in isolation and therefore the unity of the nations is needed for cultural, intellectual, moral and spiritual enrichment and also for socio-economic development and it is possible through translation. Translation is the barometer of nation's advancement in the field of education and employment, culture and literature, cinema and mass media, bi-lateral dialogue and diplomacy etc…. Translation is an effective medium of promoting dialogue and diplomacy, education and employment, bi-lateral relations, socio-economic ties and treaties etc… It is emerging as a global means of communication in an era of globalization. Translation is a powerful weapon through which we can unite all the nations under one banner and establish peace and harmony across globe and ensure bi-lateral dialogue and development in the field of education, tourism etc ….. among all nations.

Translation encompasses various aspects related to language, culture, literature, philosophy etc….. of the society which need to be studied, imparted, incorporated into academic curriculum at institutional level for the expansion and promotion of intense interactive possibilities that will result in strengthening global dialogue, bi-lateral relations, and economic ties. Translators are like Nal and Neel who will build the durable bridge across globe which will lead to nation building through the process of expanding and promoting translation in the 21st century.

References

- Agarwal, Dr. Kusum. 1999. Anuvad Shilpa: Samkaleen Sandarbha. New Delhi: Sahitya Sahkar.
- Bhabha, Homi. 1994. The location of Culture. London: Routledge.
- Deshpandey, Sashi. 2013. Dimension of Translation: A Keynote Address in Translation and Post Colonial ties Transactions Across Languages and Cultures edited by Vijaya Guttal and Suchitra Mathur. New Delhi: Orient Black Swan Private Limited.
- Gosh, Amitabh. 1994. The Indian Express, March 20, 1994.
- Height, G. 1949. The Classical Tradition: Greek and Roman Influences on Western Literature. Oxford University Press. P.104, 106.
- House, J. 2002. Universality Versus Culture, Specificity in Translation A. Ricardi (ed.) Translation Studies: Perspectives on an Emerging Discipline (92-110), Cambridge: Cambridge University Press.
- Kumar, Ravi (ed.). 2012. Role of Translation in Nation Building. New Delhi: Modlingua.
- Lahri Jhumpa. 2000. “My intimate alien.” Outlook. New Delhi. Special Annual Issue on “Stree [Woman] pp. 116-120.
- Singh, Avadesh Kumar. 2014. "Translation Studies in the 21st Century". Published in Translation Today Volume 8, No. 1, 2014, pp. 05-44 (CII, NTM Mysore).
- Nida, E.A. 1964. Towards a Science of Translating. Leiden: E.J. Brill.
- Nyonga, Dr. Moses. 2012. “Translation and Nation Building: What a Difficult Couple!” Role of Translation in Nation Building (ed) Kumar, Ravi. New Delhi: Modlingua, p.34.
- Verma, Vimlesh Kanti and Malti (eds) Anuvad aur Tatkal Bhashantaran, New Deli. Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India

RESEARCH

शोध

मानक हिंदी के लिए संज्ञा व्युत्पादक रूपिम जनरेटर

(Derivational Morphological Generator Noun in Standard

धीरेन्द्र यादव
एम. फिल. कंप्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स
म. गां. अं. हिं. वि. वर्धा,
Mobile no. 7083453728
email-id- dheerendra.linguistics@gmail.com

हिंदी भाषा को वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो अभी भी इसमें कार्य करने की अपार संभावनाएं हैं। हिंदी भाषा में शब्दों की अधिक विविधता (variation) है और इसका प्रमुख कारण है उसके मूल शब्द में विभिन्न प्रत्ययों के योग से नवीन शब्दों का व्युत्पन्न होना।

परिचय :

आज का दौर सूचना प्रौद्योगिकी का है और इस दौर में प्रत्येक व्यक्ति अपनी निज भाषा में इसका उपयोग करना चाहता है। इसके लिए प्राकृतिक भाषा संसाधन तकनीक के द्वारा कई सॉफ्टवेयर उपकरण विभिन्न क्षेत्रिय भाषाओं हेतु विकसित हो रहें हैं। विश्व में तेजी से हो रहे संगणकीय भाषा के विकास ने प्रत्येक भाषा की विशेषता को बारीकी से समझने पर जोर दिया है। वर्तमान में मानक हिंदी का महत्व बढ़ा है इसी कारण आज बड़ी-बड़ी कंपनियां, संस्थान, विश्वविद्यालय इत्यादि हिंदी भाषा में रुचि लेकर कार्य कर रहे हैं। हिंदी भाषा के माध्यम से आज भारत के प्रत्येक गांव को एक साथ जोड़ने के लिए वैश्विक ग्राम की संकल्पना को साकार करने में सरकार भी प्रयत्नशील है। हिंदी आज दुनिया की प्रमुख भाषाओं में से एक है जिसे अहिंदीतर भाषी भी सीखने में रुचि दिखा रहे हैं।

हिंदी भाषा को वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो अभी भी इसमें कार्य करने की अपार संभावनाएं हैं। हिंदी भाषा में शब्दों की अधिक विविधता (variation) है और इसका प्रमुख कारण है उसके मूल शब्द में विभिन्न प्रत्ययों के योग से नवीन शब्दों का व्युत्पन्न होना। शब्दों की इस जटिल प्रक्रिया को रूपवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन व विश्लेषण करते हुए उसके रूप और रूपिम (Morph & Morpheme) की महत्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट किया गया है। जिसके तहत विशेषतौर से व्युत्पादक रूपिम पर कार्य किया गया है।

प्राकृतिक भाषा संसाधन के क्षेत्र में कई भाषा से संबंधित प्रणालियों का विकास किया जा रहा है जिसमें देश और विदेश के कई संस्थान कार्य कर रहें है। प्रस्तुत आलेख मेरे द्वारा एम.फिल. में किया गया कार्य है जिसमें हिंदी भाषा के संज्ञा रूपों का विश्लेषण/संश्लेषण कर **"मानक हिंदी के लिए संज्ञा व्युत्पादक रूपिम जनरेटर (Derivational Morphological Generator Noun in Standard Hindi)"** के निर्माण से संबंधित था। व्युत्पादक रूपिम जिसमें प्रत्यय या उपसर्ग लगाने पर उस शब्द के अर्थ में परिवर्तन होता है एवं उस शब्द की व्याकरणिक कोटि भी बदल जाती है। यह प्राकृतिक भाषा संसाधन का एक ऐसा अनुप्रयुक्त क्षेत्र है जो हिंदी भाषा के कम-से-कम धातु/प्रातिपदिक से प्रत्यय के योग से ज्यादा-से-ज्यादा शब्दों का व्युत्पादन करता है।

बीजशब्द (Keywords):- व्युत्पादक रूपिम, हिंदी भाषा, सॉफ्टवेयर प्रणाली, जनरेटर, संज्ञा, प्रत्यय।

रूपिम (Morpheme) :

रूपिम प्राकृतिक भाषा संसाधन का एक ऐसा अनुप्रयुक्त क्षेत्र है जिसमें किसी भी भाषा

के कम-से-कम धातु/प्रातिपदिक में प्रत्यय के योग से ज्यादा से ज्यादा शब्दों का निर्माण किया जाता है। व्याकरणिक विश्लेषण में 'रूपिम' (Morpheme) सबसे छोटी इकाई है।

रूपिम की परिभाषा -

भाषा की वह सबसे लघुतम इकाई जो अर्थवान हो रूपिम कहते हैं। लघुतम और अर्थवान – ये दोनों गुण रूपिम के लिए आवश्यक हैं। यहां लघुतम इकाई से अभिप्राय है कि, इस इकाई के और अर्थवान टुकड़े नहीं हो सकते।

रूपिम के प्रकार -

रूपिम को मुख्यत: दो वर्गों में बांटा गया है।

रूपिम (Morpheme)

मुक्त रूपिम (Free morpheme) बद्ध रूपिम (Bound morpheme)

मुक्त रूपिम (Free morpheme) – 'मुक्त' शब्द का ही अर्थ है "स्वतंत्र", अर्थात वे रूपिम जो भाषा में शब्दों की भांति स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त हो सकते हैं, मुक्त रूपिम कहलाते हैं।

जैसे- लड़का, बच्चा, ईमान, पुस्तक, काम, भारत आदि।

बद्ध रूपिम (Bound morpheme) – "बद्ध" शब्द का अर्थ होता है- "बंधा हुआ"। अर्थात वे रूपिम जो भाषा में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त न होकर किसी अन्य रूपिम के साथ जुड़कर आते हैं अर्थात मुक्त रूपिम पर आश्रित होते हैं, बद्ध रूपिम कहलाते हैं।

जैसे- प्रत्यय, उपसर्ग

उदाहरण:-

बद्ध	मुक्त + बद्ध	बद्ध रूपिम
ई	सवार + ई	सवारी
दार	दुकान + ई	दुकानदार
प्र	गति + प्र	प्रगति

बद्ध रूपिम का वर्गीकरण :

बद्ध रूपिम

रूपसाधक रूपिम (Inflectional Morphemes) बद्ध रूपिम (Derivational Morphemes)

रूपसाधक रूपिम वह है, जिसमें एक के बाद एक दूसरा रूपिम नहीं जोड़ा जा सकता, जैसे- लड़की-लड़कियां, किताब-किताबें, दुकान-दुकानें आदि। ए, एँ, यां, आ, ओं के बाद दूसरा और रूपिम नहीं जोड़ा जा सकता है। जबकि व्युत्पादक रूपिम में एक से

अधिक रूपिम जोड़ा जा सकता है, जैसे- भारत–भारतीय-भारतीयता, राष्ट्र-राष्ट्रीय-राष्ट्रीयता आदि। हालांकि हिंदी भाषा में रूपसाधक रूपिम में ज़्यादातर कार्य किया जा चुका है। परंतु व्युत्पादक रूपिम पर सीमित मात्रा में काम हुआ है, इसलिए प्रस्तुत आलेख में हिंदी भाषा के संज्ञा रूपों का विश्लेषण/संश्लेषण कर "मानक हिंदी के लिए संज्ञा व्युत्पादक रूपिम जनरेटर (Derivational Morphological Generator Noun in Standard Hindi)" का निर्माण किया गया है। व्युत्पादक रूपिम जिसमें प्रत्यय या उपसर्ग लगाने पर उस शब्द के अर्थ में परिवर्तन होता है एवं उस शब्द की व्याकरणिक कोटि भी बदल जाती है। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत हिंदी भाषा के संज्ञा शब्दों का संकलन कर तथा उनमें लगने वाले विभिन्न प्रत्ययों के आधार पर विश्लेषण एवं संश्लेषण किया गया है। चूंकि किसी भी संज्ञा के धातु अथवा प्रातिपदिक शब्दों में प्रत्यय के योग से उसकी व्याकरणिक कोटि का बदल जाना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। अत: प्रस्तुत आलेख में संगणकीय मॉडल का निर्माण कर विभिन्न नियम बनाकर संज्ञा व्युत्पादक रूपिम जनरेटर हेतु एक सॉफ्टवेयर प्रणाली का निर्माण किया गया है, जो संज्ञा के मूल शब्द में प्रत्यय जोड़कर उसका विश्लेषण और संश्लेषण कर उसकी व्याकरणिक कोटियों को दिखाता है। अत: प्रस्तुत आलेख में संगणकीय मॉडल का निर्माण कर विभिन्न नियम बनाकर संज्ञा व्युत्पादक रूपिम जनरेटर हेतु एक सॉफ्टवेयर प्रणाली का निर्माण किया गया है, जो संज्ञा के मूल शब्द में प्रत्यय जोड़कर उसका विश्लेषण और संश्लेषण कर उसकी व्याकरणिक कोटियों को दिखाता है।

संज्ञा व्युत्पादित शब्द :

किसी संज्ञा शब्द में प्रत्यय लगाकर नवीन शब्द निर्माण संज्ञा व्युत्पादक शब्द कहलाता है। और इस प्रकार से नवीन शब्द निर्माण प्रक्रिया संज्ञा व्युत्पादक रूपिम जनरेटर कहलाती है। प्रस्तुत आलेख में संज्ञा मूल शब्द में प्रत्यय लगाकर उसका विश्लेषण एवं संश्लेषण पर अधिक बल दिया गया है। हिंदी में मूल धातु अथवा प्रातिपदिक में अधिक से अधिक चार स्तरों तक प्रत्ययों का संयोग मिलता है। एक प्रत्यय का संयोग सर्वोपरि है। दो प्रत्ययों के संयोग कुछ कम मात्रा में मिलते हैं। तीन प्रत्ययों के संयोग कुछ और कम तथा चार प्रत्ययों के संयोग बहुत ही कम देखने को मिलते हैं। इसके अंतर्गत तीन स्तरों तक प्रत्यय लगाकर उसका विश्लेषण एवं संश्लेषण किया गया है। संज्ञा व्युत्पादक टूल में तीनों स्तरों के अलग-अलग व्याकरणिक कोटियों का एवं संज्ञा मूल के साथ प्रत्यय लगाने के पश्चात जो रूपस्वनिमिक परिवर्तन होते हैं के आधार पर नियमों का निष्पादन कर शब्दों को व्युत्पादित किया गया है। कम से कम प्रत्ययों के संयोग से कम से कम मूल धातु/प्रातिपदिक शब्दों से अधिक से अधिक शब्दों का निर्माण किया जा सकता है। चूंकि मेरा एम.फिल. का कार्य प्राकृतिक भाषा संसाधन की दृष्टिकोण से किया गया है जिसमें रूपिम विश्लेषण एक महत्वपूर्ण चरण है। किसी भी भाषा के व्यवहारिक प्रयोग हेतु उस भाषा के रूपिम विश्लेषण को जानना व समझना अति आवश्यक है क्योंकि इसी के आधार पर नवीन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यदि किसी भी भाषा का रूपिम विश्लेषण नहीं किया गया तो उस भाषा के सभी शब्दों का प्रयोग किया जाना संभव नहीं है। जैसा कि, हम सभी जानते हैं कि, भाषा के शब्द नए-नए रूप में बनते और प्रयोग में आते हैं। इस परिस्थिति में किसी भी भाषा के संपूर्ण शब्दों का प्रयोग संगणकीय परिप्रेक्ष्य में नहीं किया जा सकता है जब तक कि, रूपिम विश्लेषण एवं संश्लेषण न कर लिया जाए।

रूपस्वनिमिक विश्लेषण: संगणकीय मॉडल

प्राकृतिक भाषा संसाधन के किसी भी स्तर पर कार्य करने अथवा किसी भाषिक टूल्स का निर्माण करने हेतु एक संगणकीय मॉडल का निर्माण करना आवश्यक होता है जिसके प्रयोग से संगणक में भाषिक क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। यहां पर संज्ञा व्युत्पादक रूपिम जनरेटर हेतु एक प्रणाली का निर्माण किया गया जिसमें एक संगणकीय मॉडल का प्रयोग किया गया है।

रूपस्वनिमिक नियम: प्रस्तुत आलेख कार्य पूर्ण रूपेण नियम आधारित है इसलिए संज्ञा में प्रयुक्त होने वाले प्रत्ययों के बीच नियमों का प्रतिपादन किया गया है जो निम्न प्रकार हैं-

नियम :- जब किसी अकारांत, आकारांत, इकारांत, आदि धातु/प्रातिपदिक के साथ 'ई' प्रत्यय लगता है या ऐसा कोई प्रत्यय जिसका पहला अक्षर (ई, ईचा, ईदा, ईन, ईना, ईय, ईला)'ई' है, तब उस प्रत्यय का पहला अक्षर 'ई' का मूल शब्द में लोप होते हुए मात्रा (ी) के रूप में प्रयोग किया जाता है।

नियम :- ऊकारांत 'ऊ' से शुरू होने वाले धातु/प्रातिपदिक में 'इक' प्रत्यय लगाने पर ऊकारांत 'ऊ' – औ ('ौ') मात्रा में बदल जाता है, तथा 'इक' प्रत्यय में 'इ' का मूल शब्द में लोप होते हुए मात्रा (ि) के रूप में प्रयोग किया जाता है।

नियम :- धातु/प्रातिपदिक के अंत में आकारांत आ ('ा') मात्रा है एवं संलग्न प्रत्यय का अकारांत आ ('ा') है तो संलग्न प्रत्यय के आकारांत आ ('ा') का लोप हो जाता है।

प्रस्तुत आलेख में तीन स्तर तक के प्रत्यय लगाकर बनाए गए शब्दों का विश्लेषण निम्नलिखित है-

धातु/ प्रातिपदिक, संज्ञा	प्रथम स्तर प्रत्यय	विशेषण	द्वितीय स्तर प्रत्यय	संज्ञा	तृतीय स्तर प्रत्यय	विशेषण
भारत	ईय	भारतीय	ता	भारतीयता	वादी	भारतीयतावादी
राष्ट्र	ईय	राष्ट्रीय	ता	राष्ट्रीयता	वादी	राष्ट्रीयतवादी
भूत	इक	भौतिक	ता	भौतिकता	वादी	भौतिकतावादी

प्रस्तुत आलेख में दो स्तर तक के प्रत्यय लगाकर बनाए गए शब्दों का विश्लेषण निम्नलिखित है-

धातु/प्रातिपदिक, संज्ञा	प्रथम स्तर प्रत्यय	विशेषण	द्वितीय स्तर प्रत्यय	संज्ञा
संज्ञा	हीन	संज्ञाहीन	ता	संज्ञाहीनता
जान	कार	जानकार	ई	जानकारी
संवेदन	शील	संवेदनशील	ता	संवेदनशीलता

प्रस्तुत आलेख में एक स्तर तक के प्रत्यय लगाकर बनाए गए शब्दों का विश्लेषण निम्नलिखित है-

धातु/प्रातिपदिक, संज्ञा	प्रथम स्तर प्रत्यय	विशेषण
कृपा	आलु	कृपालु
स्वाद	इष्ट	स्वादिष्ट
कर्म	ठ	कर्मठ

कलनविधि (Algorithm) -

निर्माण किए जा रहे प्रणाली (सॉफ्टवेयर) में प्रयुक्त कलनविधि इस प्रकार से है-

चरण 1. प्रोग्राम (सॉफ्टवेयर) आरंभ किया।

चरण 2. प्रोग्राम के निवेशी बॉक्स में शब्द (हिंदी संज्ञा) प्रविष्ट किया।

चरण 3. प्रोग्राम के शब्द व्युत्पादन बटन (जनरेट) पर क्लिक किया।

चरण 4. निवेशी शब्द को डाटाबेस में संग्रहित शब्दों से मिलान कराया गया।

चरण 5. यदि निवेशी शब्द डाटाबेस में संग्रहित शब्द से मिलान करता है तो उक्त शब्द में संभावित विभिन्न प्रत्ययों को जोड़ कर नवीन शब्दों का निर्माण कार्य किया जाता है, साथ ही व्युत्पादित नवीन शब्दों की वैधता को पुनः डाटाबेस में संग्रहित शब्दों से मिलान कराते हुए स्पष्ट किया जाता है। यह प्रक्रम कई चरणों में पूरा होते हुए सटीक परिणाम देता है। यदि निवेशी शब्द डाटाबेस में संग्रहित शब्द से मिलान नहीं करता है तो चरण 6 के अनुसार कार्य होगा।

चरण 6. इस स्थिति में प्रोग्राम एक संदेश प्रेषित करेगा जो इस प्रकार से होगा - “Input word not correct or the word not found in database…. Please try again! ”

चरण 7. प्रोग्राम बंद किया गया।

फ़्लोचार्ट

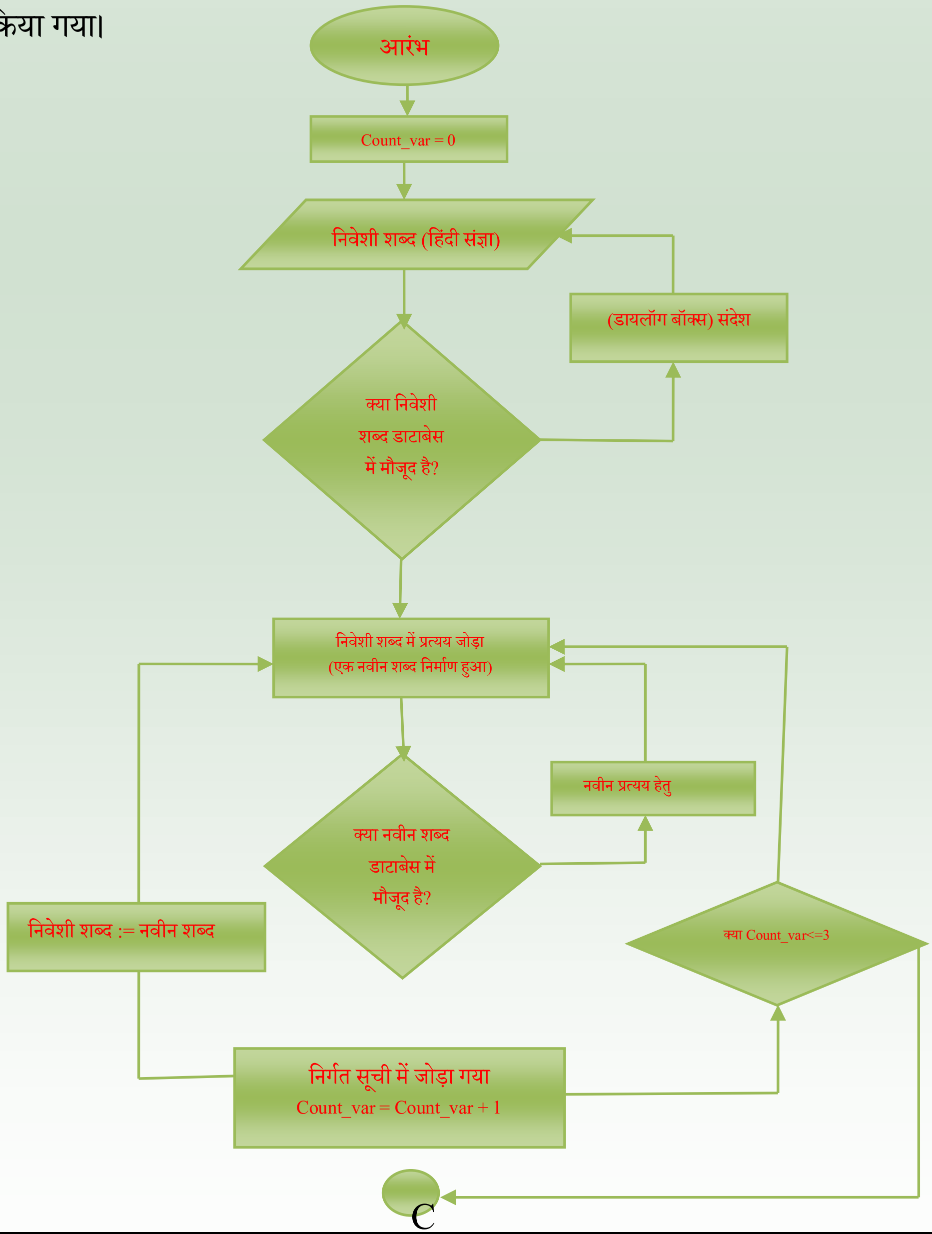

 ISSN 2455-0310

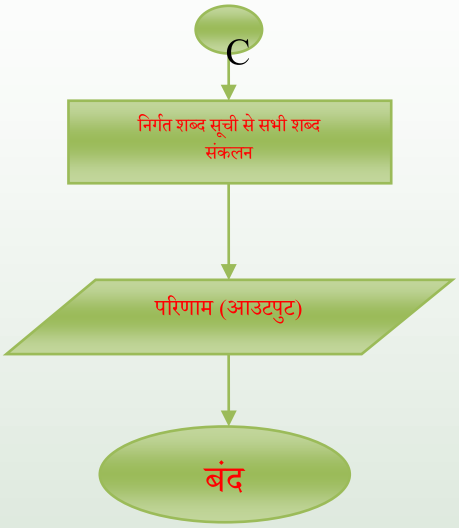

निष्कर्ष :

संगणकीय मॉडल का प्रयोग कर रूपस्वनिमिक नियम बनाकर संज्ञा व्युत्पादक रूपिम जनरेटर नामक एक टूल्स का निर्माण किया गया है। जिसमें संज्ञा के मूल शब्द में प्रत्यय जोड़कर उसका विश्लेषण और संश्लेषण कर उसकी व्याकरणिक कोटि तथा प्रत्यय को स्वत: दिखा सकते हैं।

यह प्रणाली प्राकृतिक भाषा संसाधन अर्थात हिंदी भाषा (देवनागरी लिपि) आधारित विभिन्न अनुप्रयोगों हेतु प्रयुक्त हो सकती है जो इस प्रकार से हैं:-

1. वर्तनी जांचक में (विशेष तौर पर)

2. POS टैगर के रूप में

3. मशीनी अनुवाद में

4. सूचना पुनरप्राप्ति में आदि।

संदर्भ- सूची :

1 सिंह, सुधाकर. (1998). समसामयिक हिन्दी में रूपस्वनिमिक. वाराणसी : विजय कुमार अग्रवाल प्रकाशन.

2 सिन्हा, लक्ष्मण प्रसाद. (1983). हिन्दी भाषा का रुपिमीय विश्लेषण. पटना : अंशुकमल प्रकाशन.

3 अग्रवाल, चमनलाल. (1981). हिन्दी रुपविज्ञान. नयी दिल्ली : अग्रवाल प्रकाशन.

4 उप्रेती, मुरारी लाल. (2009).हिन्दी में प्रत्यय एवं पश्चाश्रयी. दिल्ली : आलेख प्रकाशन.

5 पाण्डेय, अनिल कुमार. (2010). हिंदी संरचना के विविध पक्ष. नयी दिल्ली : प्रकाशन संस्थान.

ISSN 2455-0310

कैमरा

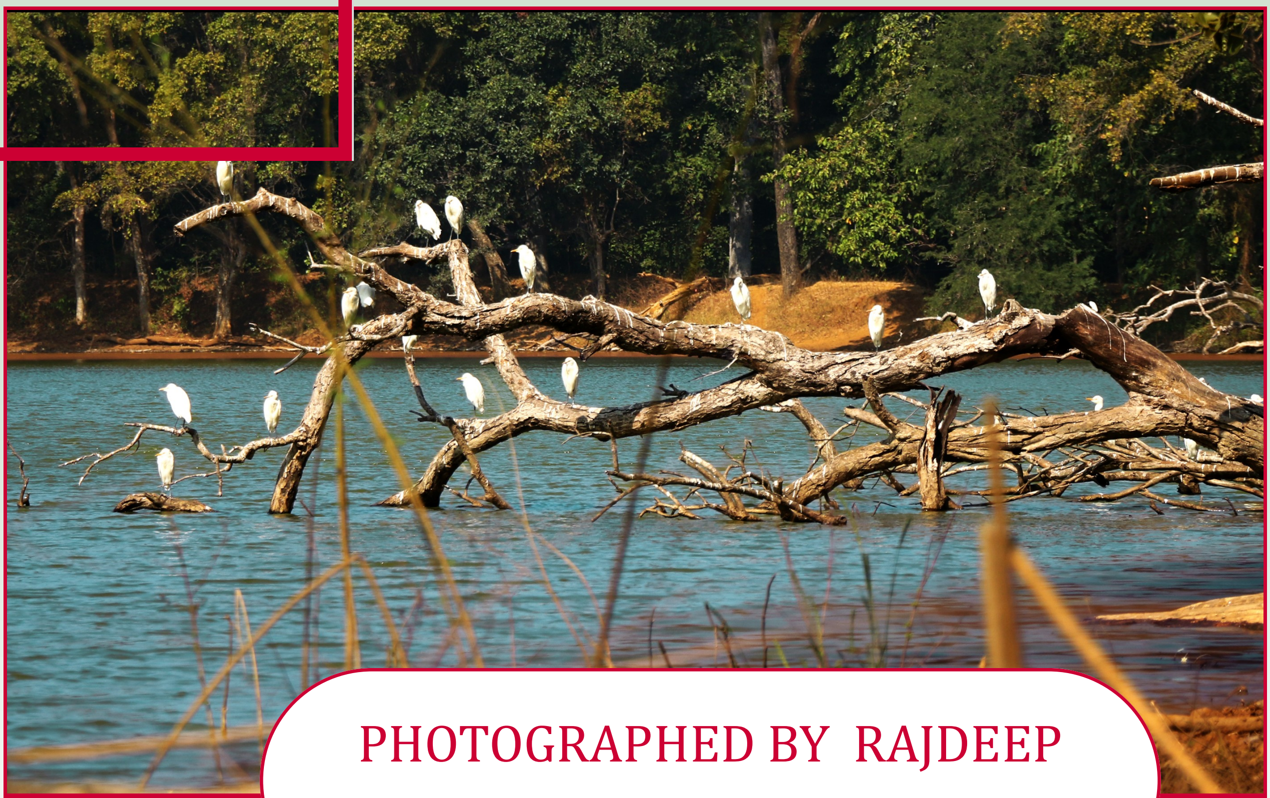

PHOTOGRAPHED BY RAJDEEP

ISSN 2455-0310

CREATION

लेखनी

सृजन

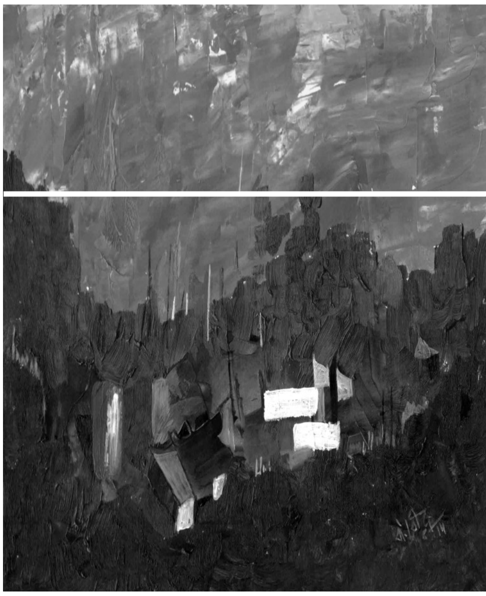

खुरदुरे पैर की जमीन

सदियों से देख रहा हूं मैं
इन्हीं खुरदुरे पैरों को
हांफता
झुंझलाता
कांपता
बौखलाता हुआ
पर...
कुछ भी नहीं कर पा रहा हूँ
इन फटेहाल पैरों का
जिनकी दरारें धीरे-धीरे
अब और बढ़ती जा रही हैं
दिन-प्रतिदिन.....

(विदर्भ के किसान-आत्महत्या पर केंद्रित)

डर

शहर में
ऐलान कर दिया गया
है...
दहशत पैदा करो
अफ़वाह फैला दो
सतर्क कर दो
एक-एक को
कि,
"लोग उनसे डरें।"
शागिर्दों को भी
गोपनीय हिदायतें दे दो
किसी को
भनक तक न लगे
कि,
वह भी किसी से 'डरते
हैं'
इसी शहर में ...

'रविशंकर होने का मतलब...उम्मीद अब भी बाकी है'

मैं जानता हूँ
तुम्हारे सपनों में
बची हैं, अभी भी अनगिनत उम्मीदें
क्योंकि
तुम्हारे होने का मतलब ही है
'उम्मीदों का बाकी होना'
जिनसे लोग आज भी बुना करते हैं
अपने-अपने सपने
तुम्हारी उम्मीदों के पूरा होने तक

प्रदीप त्रिपाठी

ISSN 2455-0310

CREATION

सृजन

लेखनी

1

सुनिए, क्या आप जानते हैं आग से
आग बुझती है?

यकीन नहीं आता तो पूछ लीजिये
उस औरत से
जो सेकती है रोटी तो कभी बिस्तर
कभी बिस्तर तो कभी रोटी
या
रोटी के लिए बिस्तर

उसके पेट की आग बुझती है उनके
जिस्म की आग ठंडी होने पर

जरा और साफ लफ्जों मे कह दूँ...

उनके जिस्म की आग से ही जलता
है उसके घर का चूल्हा
और वह सेकती है रोटी
तो कभी बिस्तर
कभी बिस्तर तो कभी रोटी
या यूं कहें
रोटी के लिए बिस्तर से लाती है
आग

2

सुनो मेरे तथाकथित शुभचिंतकों
तुम बोल लो, लड़ लो, उठाओ
सवाल मंच से और खूब बटोरो
तालियां...
मंच से नीचे, मेरी कविता भी
बोलती रहेगी जबान बनकर
जलती रहेगी मशाल बनकर
उठती रहेगी सवाल बनकर
लड़ती रहेगी तलवार बनकर
और मैं
जड़ती रहूंगी तमाचा तुम्हारे मुंह पर
कविता बनकर

मेघा आचार्य

www.transframe.in ISSN 2455-0310

तुलिका

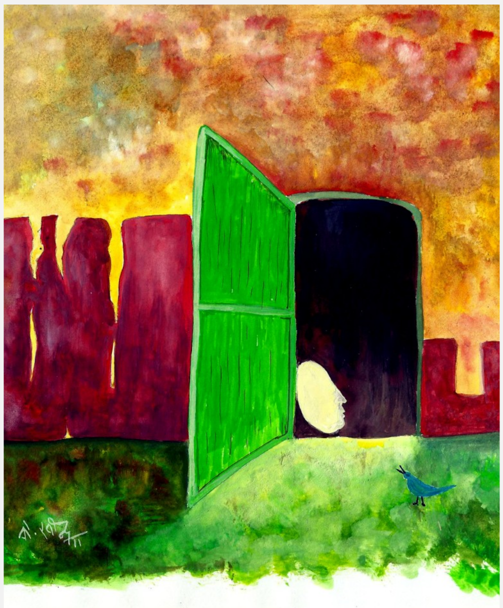

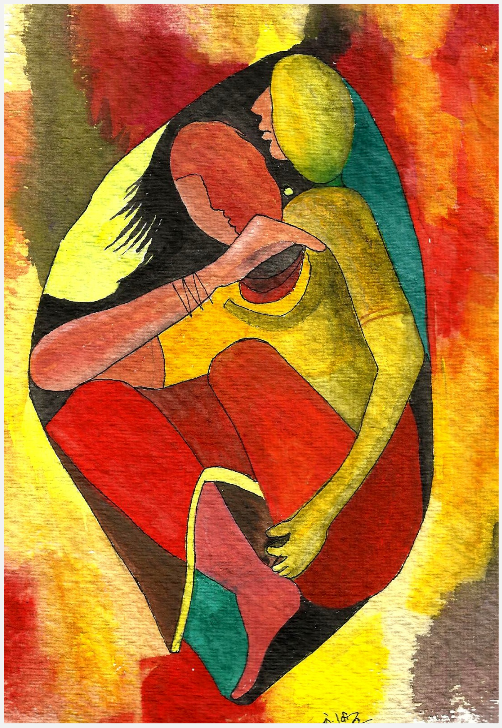

कुंवर रवींद्र

बातचीत

बातचीत : हिंदी भाषा की रूसी अध्यापिका इंदिरा जी के साथ

प्रश्न: मैम सबसे पहले आपका परिचय?

उत्तर : मेरा नाम इंदिरा है। मेरा जन्म ताशकन में उज़बेगीस्तान में हुआ। मेरे माता-पिता ताशकन में रहते हैं। जिस समय सोवियत संघ था उस समय मैं पीएच.डी. करने के लिए मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय, मॉस्को गई। इस दौरान ही मेरा विवाह हो गया और मै मॉस्को में रहने लगी। वर्तमान में मैं रूसी राजकीय मानविकी विश्वविद्यालय में हिंदी का अध्यापन कार्य करती हूँ। रूसी राजकीय मानविकी विश्वविद्यालय एक बड़ा विश्वविद्यालय है जिसमें 7000 विद्यार्थी और 1000 अध्यापकगण हैं। यहां हिंदी विभाग हैं जिसमें मैं और मेरी युवा छात्रा हिंदी का अध्यापन कार्य करते हैं। वर्ष 2000 से मैं इस विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ा रही हूँ। इससे पूर्व मैं मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय में हिंदी अध्यापन का कार्य करती थी। मैं एक हिंदी अध्यापिका के रूप बहुत खुश हूँ।

> अनुवाद विश्व को एक सूत्र में पिरोता है। सभी देशों का अपना साहित्य है जिससे हम उस देश के सामाजिक संस्कृतिक संदर्भों में झांक सकते हैं और यह केवल अनुवाद के माध्यम से ही संभव होता है।

प्रश्न : हिंदी भाषा के अध्ययन में आपकी रुचि कैसे निर्माण हुई? हिंदी की पढ़ाई आपने कहां से की हैं?

उत्तर : हिंदी बहुत ही सुंदर भाषा है। ताशकन में मैंने 5 साल हिंदी की पढ़ाई की है। मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय से मैंने पी-एच.डी. की हैं। ताशकन विश्वविद्यालय में भी एक बहुत बड़ा हिंदी विभाग है। यहां मेरे विद्वान अध्यापकगणों का सानिध्य में रहने का मौका मुझे मिला। इतिहास साहित्य दर्शनशास्त्र संस्कृत यह विषय मैंने पढ़े हैं। विश्वविद्यालय से दो-तीन छात्रों का एक दल हिंदी सीखने के लिए जेएनयू भेजा जाना था। परंतु माननीय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या के कारण सुरक्षा का हवाला देते हुए यह कार्यक्रम रद्द कर दिया गया और अफसोस कि, हिंदी सीखने के लिए मैं भारत नहीं आ पाई।

......मेरा नाम भी इंदिरा है(हंसते हुए)। इंदिरा इंडोयूरोपियन नाम है। सायबेरिया एक नदी है इनदिगीरका, इंदिरा भी कहा जाता हैं। लेकिन जब भारत और रूस के बीच कूटनीतिक संबंध स्थापित हुए और 1955 में इंदिरा गांधी अपने पिता जवाहरलाल नेहरू के साथ रूस आई थी तब उनसे प्रभावित हो कर रूस में बहुतसी कन्याओं का नाम इंदिरा रखा गया।

प्रश्न : हिंदी भाषा को आप किस रूप में देखती हैं?

उत्तर : हिंदी तो बहुत सुंदर अद्भुत भाषा है। बहुत सारे देशों में हिंदी बोली समझी जाती है। मेरा

मेघा आचार्य

शोधार्थी - पी-एच.डी.

अनुवाद अध्ययन विभाग,
म.गां.अं.हिं.वि. वर्धा, महाराष्ट्र
email-id–
achryamegha20@gmail.com

विश्वास है कि, आने वाले समय में यह भाषा और भी विस्तार करेगी। मैं अपने छात्रों को हिंदी सीखने के लिए प्रोत्साहित करती हूँ। 15 वर्ष के अध्यापन के कार्यकाल में मेरे बीस छात्रों ने हिंदी भाषा की पढ़ाई की हैं जिन्हें भारतीय कंपनियों में, दूतावास में और जे.एन.यू सांस्कृतिक अकादेमी. में रोज़गार प्राप्त हुआ है। लगभग दस से बीस छात्र एम.बी.ए., हिंदी में एम.ए. और डिप्लोमा की पढ़ाई के लिए हैदराबाद विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय और जे.एन.यू आए और अपने देश लौटकर अच्छी नौकरियां कर रहे है। रूस में हिंदी सीखने वाले छात्रों को रोज़गार तुरंत मिल जाता है। इसलिए हम इसे रोज़गारपरक भाषा के रूप में भी देख सकते हैं।

प्रश्न : हिंदी भाषा शिक्षण के लिए जो विभिन्न प्रविधियां आप प्रयोग करती हैं उसमें अनुवाद प्रविधि का भी आप प्रयोग करती है। मेरा सवाल है कि, जब आप रूसी से हिंदी, हिंदी से रूसी में अनुवाद करती हैं तो किस प्रकार कि, समस्याओं का सामना आपको करना पड़ता है?

उत्तर : जी, हिंदी विश्वविद्यालय के अनुवाद अध्ययन विभाग में जब हमारा दल भेट के लिए गए था तब माननीय कुलसचिव जी ने अपने वक्तव्य में कहा था कि, वे रोज़ाना एक पृष्ठ का अनुवाद करते हैं। मैं समझती हूँ कि, उनका अनुवाद का अनुभव बहुत बड़ा हैं इसलिए अनुवाद करना उनके लिए आसान भी हैं। लेकिन भाषा शिक्षण की प्रविधि के रूप में हमारे लिए (हसते हुए) अनुवाद करना -कराना और सीखना-सिखाना बड़ा कठिन कार्य है। हिंदी और रूसी दोनों ही भाषाएं व्याकरणिक और संस्कृतिक दृष्टि से एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। कविता, कहानी, उपन्यास आदि साहित्यिक पाठों का अनुवाद कार्य बहुत समय लेता है, क्योंकि उसमें निहित अर्थ की विभिन्न छटाओं को पूरी तरह उतार पाना अपने आप में कठिन कर्म हैं। इसके लिए बहुत अनुभव की आवश्यकता है।

अनुवाद करते हुए हिंदी और रूसी के अलग-अलग शब्दक्रम के कारण सामान्य तौर पर सामान्य तौर पर समस्या आती है। रूसी का शब्द क्रम कर्ता क्रियापद और कर्म है वहीं हिंदी का शब्दक्रम कर्ता कर्म और क्रियापद है। छात्रों को बताया जाता हैं कि, पहले हिंदी का पूरा वाक्य ध्यान से सुने क्योंकि हिंदी में क्रिया अंत में होती है और जिससे वाक्य किस काल काल का है यह पता चल जाता है। इसके लिए छात्रों को यूट्यूब से हिंदी में भाषण सुनाया जाता है।

प्रश्न : रूस में या आपके विश्वविद्यालय में हिंदी-रूसी, रूसी-हिंदी को लेकर तकनीकी विकास या मशीनी अनुवाद की दिशा में आपकी जानकारी में किस तरह के काम हो रहे है?

उत्तर : जी यह मेरा विषय नहीं है परंतु मेरी जानकारी में हैं कि, विश्वविद्यालय में अनुवाद विभाग है जिसमें छात्रों को बीए के दौरान मशीन अनुवाद पढ़ाया जाता है और यहां विविध भाषाओं के मशीन अनुवाद के संदर्भ में शोध कार्य करवाया जाता हैं। मशीनी अनुवाद में बी.ए. एम.ए. पी-एच.डी. करने वाले छात्रों को बड़ी कंपनियों में तुरंत नौकरियां मिल जाती है।

प्रश्न : वैश्विक स्तर पर अनुवाद को आप किस रूप में देखती है?

उत्तर : मैं समझती हूँ कि, अनुवाद विश्व को एक सूत्र में पिरोता है। सभी देशों का अपना साहित्य है जिससे हम उस देश के सामाजिक संस्कृतिक संदर्भों में झांक सकते हैं और यह केवल अनुवाद के माध्यम से ही संभव होता है। वैश्विक स्तर पर अनुवाद अंतरराष्ट्रीय संबंधों के गुरुतर दायित्व का वहन करता है। मैं बताना चाहूंगी कि, हमारा भी शिक्षकों, लेखकों और अनुवादकों का एक समूह हैं जो रूसी-हिंदी के आधुनिक साहित्य का अनुवाद कार्य करते हैं।

अनूदित

अस्वीकरण के कारण लुप्त या मृतप्राय शब्द तथा अभिव्यक्तियां

एक अध्ययन

अस्वीकरण के कारण लुप्त या मृतप्राय शब्द तथा अभिव्यक्तियां : एक अध्ययन

तारिक खान,
पंचानन मोहंती
ए.एल.टी.एस.
केंद्र, हैदराबाद
विश्वविद्यालय

अनुवादक
सूर्या. ई. वी.
सहायक प्रोफ़ेसर,
इलाहाबाद केंद्र,
म.गां.अं. हिं. वि. वर्धा,
महाराष्ट्र
संपर्क- 09161084666

सारांश

लुप्तप्राय भाषाओं पर शोध में सर्वथा विपरीत दो दृष्टिकोण हैं। एक में संदर्भित भाषा को इसकी समग्रता में लिया जाता है। तदनुसार, भाषा को सुरक्षित, लुप्तप्राय या विलुप्त की श्रेणी दी जाती है। इस दृष्टिकोण को "समग्र भाषा दृष्टिकोण" कहा जा सकता है। दूसरे दृष्टिकोण में किसी भाषा के कुछ ऐसे पहलुओं का अध्ययन किया जाता है जो परिवर्तन/हानि से गुजर रहे हैं। इसे "आंशिक भाषा दृष्टिकोण" कहा जा सकता है। पहला भाषा के स्थूल दृष्य को प्रस्तुत करता है, जबकि दूसरा सूक्ष्म दृष्य को प्रस्तुत करता है। इस आलेख में हम बिहार के मगध क्षेत्र में भाषा के विलुप्तीकरण, परिवर्तन तथा हानि का अध्ययन करने के लिए दूसरे दृष्टिकोण को अपनाएंगे। यह देखा गया है कि, बिहार के मगध क्षेत्र के भाषाई समुदाय की भाषाई विविधता परिवर्तन से गुजर रही है। परिणामस्वरूप मगही, बांग्ला तथा उड़िया से आनुवंशिक रूप से संबंधित सैकड़ों देशी शब्द व भाव धीरे-धीरे इस भाषाई समुदाय की बोलचाल से विलुप्त हो रहे हैं।

इस आलेख में हम उन शब्दों तथा अभिव्यक्तियों की प्रकृति तथा स्वरूप पर दृष्टि डालेंगे जो विलुप्त हो रहे हैं तथा इस हानि के लिए उत्तरदायी भीतरी व बाहरी शक्तियों की जांच करेंगे। खतरे में घिरे शब्दों और अभिव्यक्तियों के उपयोग के संबंध में तीन अवलोकन किए गए हैं: पुरानी पीढ़ी (40 से अधिक उम्र के लोग) उनका उपयोग करती हैं, बीच की पीढ़ी (20-40 वर्ष की उम्र के लोग) उनको समझती है लेकिन उनका उपयोग नहीं करती है। जबकि युवा पीढ़ी (20 वर्ष की उम्र से कम के लोग) उनको जानती तक नहीं। कुछ मामलों में ये शब्द रूप व अभिव्यक्तियां अपने हिंदी-उर्दू के प्रतिरूपों से प्रतिस्थापित हो जाते हैं। जबकि दूसरों के साथ कोई प्रतिस्थापन नहीं होता है। कुछ मामलों में वे अपने पुराने या मानक रूपों में विरूपणों के रूप में मौजूद होते हैं जबकि दूसरे मामलों में वे बस समाप्त हो गए।

इन अभिव्यक्तियों का उपयोग कम होता जा रहा है और पीढ़ियों के बीच उनका संचरण सिकुड़ता जा रहा है। हम आत्म-मूल्यांकनों, ग्रेडिंग, साथियों के साथ विमर्श तथा विभिन्न उम्र समूहों के बीच आयोजित एक सर्वेक्षण के आधार पर इन अवलोकनों पर पहुंचे हैं। इस भाषा के संदर्भ में यह आलेख खतरे में शामिल/ खो गए शब्दों व अभिव्यक्तियों का प्रत्यक्ष विवरण विकास करने की दिशा में पहला प्रयास है। यह हानि की प्रकृति तथा प्रतिरूप के विश्लेषण का भी प्रयास है तथा उन ताकतों को खोजने का प्रयास है जिनसे इस तरह की परिस्थिति पैदा हो रही है।

परिचय

यह आलेख सूक्ष्य दृष्टि से भाषा की खतरे की स्थिति का विश्लेषण करता है। यह उन सैकड़ों शब्दों के एक छोटे से प्रतिदर्श का प्रतिनिधित्व करता है जो समय के साथ विलुप्त हो गए, हालांकि संदर्भित भाषा जीवित है। किसी भाषा का अध्ययन करने वाले प्रणाली संबंधी दृष्टिकोण, समग्र रूप से इस प्रकार की हानि को देख पाने में असफल रहते हैं। जिसके परिणामस्वरूप भाषा उत्साहियों को अक्सर ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जहां

पर भाषा अपने महत्वपूर्ण हिस्से को खो चुकी होती है। इस आलेख में, इन प्रणाली संबंधी पहलुओं पर विचार किया गया है। इस परिस्थिति का सामना करने के लिए एक नए नैदानिक स्केल को अपनाया गया है। ऑस्टिन तथा सलाबैंक से संकेत लेते हुए (2011) "इन दस्तावेजीकरण प्रयासों से भाषा विज्ञान, भाषा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र तथा अन्य में कई विकासों को संपन्न किया है" शब्दों और अभिव्यक्तियों का एक छोटा सा कोष बनाया गया है। छः तालिकाओ तथा ग्रेडिंग के माध्यम से, विलुप्ति का खतरा झेल रहे कुछ शब्दों तथा अभिव्यक्तियों की स्थितियों को इस आलेख में प्रस्तुत किया गया है। ग्रेडिंग की 1-3 की सीमा इन शब्दों तथा अभिव्यक्तियों के बीच की पीढ़ी (20-40 वर्ष की उम्र) में चलन को प्रदर्शित करती है। क्योंकि, पुरानी पीढ़ी (40 वर्ष से अधिक उम्र के) इनको बातचीत में अपनाती है और युवा पीढ़ी (20 वर्ष से कम उम्र के) इनको नहीं जानती है, यह स्पष्ट है कि, संचार इस स्तर पर बाधित हुआ है। यह वो जनसंख्या है जिसने इनके उपयोग को लगभग समाप्त करके लुप्तप्राय करने की अवस्था तक ला दिया है। यही वह स्तर है जहां पर जरूरी दस्तावेजीकरण तथा पुनरुद्धार गतिविधियों को शुरू किया जाना चाहिए। यहां किए गए दावे, छः तालिकाओं में प्रस्तुत प्रतिदर्श आंकड़ों से समर्थित हैं। तालिकावार प्रस्तुतिकरण के साथ हानि की प्रकृति तथा प्रतिरूप का विश्लेषण दिया गया है। फिर, उन आंतरिक व वाह्य कारकों की जांच और चर्चा की गयी है जो इस परिस्थिति के लिए जिम्मेदार हैं।

एक ओर इस संकटग्रस्त स्थिति पर इस आलेख का अपना महत्व है वहीं दूसरी ओर इसका महत्व विलुप्त होने के खतरे का सामना करने वाले इस शब्द संग्रह के अध्ययन के लिए अपनायी गयी कार्यप्रणाली और दृष्टिकोणों पर निर्भर करता है। व्याकरण या संयोजन गुणों की हानि/परिवर्तन की तुलना में शब्दों/वाक्यांशों तथा अभिव्यक्तियों की हानि भाषा के संकटग्रस्त होने का अधिक मजबूत संकेत है। समस्या की जड़ यह है कि, भाषा के रखरखाव तथा पुनरुद्धार की हिमायत करने वालों को इस परिस्थिति का अभी तक ज्ञान नहीं है। यह आलेख प्रणाली संबंधी मामलों की शुरुआत करता है और एक वह दृष्टिकोण अपनाता है जो संबंधित विषय में भाषा, वक्ता तथा संस्कृति व पारिस्थितिकी को विशिष्ट रूप से संबोधित करता है।

प्रणाली संबंधी चिंताएं

ऐसा क्यों है कि, अक्सर स्थिति का जायजा लेने व उपचार प्रक्रिया शुरु करने में विलंब/काफी देरी हो जाती है। इसका कारण यह हो सकता है कि, शोधकर्ताओं ने हमेशा "समग्र भाषा दृष्टिकोण" अपनाया है। इसी कारण से परिणाम भी स्थूल दृष्टिकोण वाला रहा। समग्र भाषा दृष्टिकोण के साथ समस्या यह है कि, कोई प्रतिस्थापन या हानि को पकड़े जाने तक भाषाई तथा सांस्कृतिक जानकारी का एक बड़ा हिस्सा पहले ही गुम हो चुका होता है। जबकि सूक्ष्म दृष्टिकोण, अवनति के रूझान को पहचानेगा और सकारात्मक कार्रवाइयों के लिए संबंधित एजेंसियों को चेतावनी देगा। इस कारण से एक गतिशील और सतर्क भागीदारी की जरूरत होती है। आप चाहे इसके सदस्य हों या बाहरी व्यक्ति, बोलने वाले समुदाय के साथ जुड़ाव एक कठिन लेकिन लाभदायक गतिविधि है।

भाषा संपर्क और हानि के दो आयाम है- एक संरचना है और दूसरा अर्थ संबंधी और व्यवहार मूलक है। संरचनात्मक स्तर पर भाषा के मिश्रित गुण बदल जाते हैं। हालांकि अर्थ संबंधी और व्यवहार मूलक स्तरों पर परिवर्तन/हानि के सांस्कृतिक संकेतार्थ होते हैं। शब्दों तथा अभिव्यक्तियों के स्तर पर ही जरूरी सांस्कृतिक जानकारी का कूटलेखन होता है। इस प्रकार से उनमें किसी नकारात्मक रुझान की पहचान करना तथा बचाव उपाय शुरु करना महत्वपूर्ण है। इस संबंध में यहां पर अपनाया गया गतिशील दृष्टिकोण इसको अतिरिक्त मूल्य प्रदान करता है। क्योंकि यह शब्दों और अभिव्यक्तियों, उनके उपयोग तथा विभिन्न पीढ़ियों के बीच उनके उपयोग पर ध्यान केन्द्रित करता है, इसलिए इसका लाभ यह है कि, ये जानकारी देने वालों के साथ अच्छा तालमेल विकसित करने में सहायता करती है। जमीनी कार्यकर्ता तथा स्थानीय भाषा बोलने वाले के बीच पहले वैचारिक आदान-प्रदान के रूप में एक औपचारिक साक्षात्कार में, शब्द सूची जमीनी कार्यकर्ता को उनके बीच कार्य संबंध के शुरुआत में एक सकारात्मक स्वर निर्धारित करने के लिए अवसर देती है।

निदान

ड्वायर (2011) ने भाषाई संकटग्रस्तता के मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित तीन साधनों का विश्लेषण किया:

(क) श्रेणीबद्ध अंतर-पीढ़ी विघटन स्केल (GIDS; Fishman, 1991)

(ख) विस्तरित श्रेणीबद्ध अंतर-पीढ़ी विघटन स्केल (EGIDS; Simon and Lewis, 2006) तथा

(ग) UNESCO के नौ कारक (Ad Hoc Expert Group, 2003)।

यहां पर चिंता का विषय यह नहीं है कि, क्या एक साधन दूसरे से बेहतर है। वास्तव में यहां पर चिंता का विषय यह है कि, ये सभी साधन संकटग्रस्त भाषा के साथ समग्र व्यवहार करते हैं। इसलिए, सूक्ष्म स्तर पर, शब्दों और अभिव्यक्तियों की हानि जैसी चीज़ों की अनदेखी हो जाती है। इस संबंध में, यूनेस्को तदर्थ विशेषज्ञ समूह ने जिन मात्र दो कारकों का सुझाव दिया है वे प्रासंगिक हैं। इसलिए, इस आलेख में भाषाई संकटग्रस्तता के मूल्यांकन के प्रयोजन के लिए तीन बिंदु स्केल अपनाया है; 1 शून्य उपयोग (विलुप्त) को, 2 सीमित उपयोग (संकटग्रस्त) को, 3 आम उपयोग (सुरक्षित) भाव को बताता है। नीचे दी गयी तालिकाओं (1-6) पर विचार करें:

नाम	संदर्भ	श्रेणी	वर्ग
ser	1किलोलो	अगणनीय ठोस	2
ɟɔɽa	जोड़ा	गणनीय ठोस	3
gənda	चार का समूह	गणनीय ठोस	1
पसेरी	5 किलो	अगणनीय ठोस	2
dərɟən	12 का समूह	गणनीय ठोस	3
kɔɽi	20 का समूह	गणनीय ठोस	1
mən	40 किलो	अगणनीय ठोस	1
kənua	> 100 मिली	तरल	1
c^hətak	< 100 मिली	तरल	1

तालिका 1 मापन की इकाइयों तथा साधनों के नाम

इस अध्ययन में इसके अलावा दूसरी माप की गैर-मानक इकाइयों का उपयोग किया गया है। उदाहरण के लिए, विशेष रूप से घरेलू क्षेत्रों में तेल के कुछ छोटे व बड़े पात्रों को भार व माप के लिए उपयोग किया जाता है। उनको उपरोक्त तालिका में शामिल न करने का कारण यह है कि, उनके कोई विशिष्ट नाम नहीं हैं। यद्यपि एक सामान्य शब्द "nəpna" जिसका अर्थ "नापने का पात्र" है उसे उपयोग किया जा रहा है। तरल को मापने के लिए एक अन्य सामान्य शब्द "pəlli" का उपयोग किया जा रहा है। दुर्भाग्य से ये शब्द अब विलुप्त होने की कगार पर हैं।

नाम	संदर्भ	लंबाई	उपयोग	वर्ग
gulli	घंटी जैसा बहुत छोटा डंडा	< 0.5 मीटर	1	2
c^həɽi	छोटा डंडा	1 -2 मीटर	2	3
spəkka	मध्यम आकार काडंडा(लचकदार)	1 -2 मीटर	2	1
pæna	मध्यम आकार का लेकिन बिना लचक का डंडा	1 -2 मीटर	2	1
dənta	सामान्य डंडा	1 -3 मीटर	2	3
laʈ^{h}i	बड़े आकार का डडा	3 -5 मीटर	3	3
bəlla	बहुत बड़े आकार का डडा	5 -8 मीटर	4	2
bim	अत्यधिक बड़ा डंडा	> 8 मीटर	4	1

तालिका 2 आकार के अनुसार डंडों का नाम

dɘnta जो कि, डंडा शब्द का भिन्न रूप है जिसे इसके सामान्य शब्द के रूप में उपयोग किया जाता है। स्तंभ "उपयोग" के अंतर्गत रखे गए अंकीय मान, निम्नलिखित उपयोगों से संबंधित हैं:

1 खेलों व जोड़ने की सामग्रियों में,

2 सजा तथा जानवरों को हांकने में,

3खंभों के सहारे के रूप में तथा

4 इमारतों के निर्माण में।

शब्द	शब्दावली	वर्ग
sɘnɘbɘtti	शाम का लैंप	1
ɖʰibri	लैंप	1
ɖʰɔkɾi	सामान्य जेब	1
bɘgli	ऊपरी जेब	2
cʰilka	सामान्य जल इकाई	1
pæn	झील	1
bihan	सुबह	2
lahi	चिड़ियों का मल	2
ɘkɔsa	अभिशाप	1
nareti	गर्दन	1

तालिका 3 सामान्य शब्द हानि

इस तालिका में प्रस्तुत शब्द अनेक श्रेणियों से संबंधित हैं। इनको एक साथ रखने का प्रयोजन इस बात पर जोर देना है कि, किसी संकटग्रस्त शब्दावली से संबंधित शब्दों का किसी एक क्षेत्र से जुड़ा होना जरूरी नहीं है और वे काफी बड़ी भौगोलिक तथा सांस्कृतिक जानकारी से संबंधित होते हैं। इनमें से कुछ शब्दों ने समय, सांस्कृतिक अभ्यासों के साथ टेक्नोलॉजी के बदलाव के कारण प्रासंगिकता खो दी है। हालांकि, उनकी एक अच्छी संख्या प्रतिधारण और पुनरोद्धार के लायक है।

लक्षण	शब्दावली	वर्ग
hulculɪa	अति सक्रिय	1
hɘwɘnnɘk	शरारतपूर्ण	2
raɽ	कुख्यात	2
kɘmasut	मेहनती	2
kuɖʰɘga/i	अशिष्ट	1
bɘdhɘwas	अचेतन	2
lɘbɽa	जल्दी-जल्दी बोलने वाला	1
sutuk	गुप्त	1
bɘtlaha/i	अकुशल	1

तालिका 4 व्यवहार लक्षणों के लिए शब्द

यहां पर प्रस्तुत सूची समृद्ध और विविध शब्दावली का एक बेहद छोटा सा समुच्चय है जिसे बोलने वाले समुदाय ने विविध प्रकार के व्यवहार के लक्षणों को संदर्भित करने के लिए बनाए रखा है। दुर्भाग्य से यह समुदाय इनको औपचारिक परिस्थितियों में

 ISSN 2455-0310

उपयोग करना निकृष्ट समझता है और इनको क्रोध और घृणा व्यक्त करने तक सीमित कर रखा है। यह ध्यान देना दिलचस्प है कि, इन शब्दों का एक अच्छा प्रतिशत वास्तव में हिंदी-उर्दू शब्दों के समान रूपात्मक व्यवहार प्रदर्शित करता है। ये संक्रटग्रस्त हैं तथा लुप्त होने की दिशा में अग्रसर हैं जिसका मुख्य कारण यह है कि, उनके समुदायों ने उनको त्यागना शुरु कर दिया है।

भाव	अनुवाद	वर्ग
be sɪr ka/i pʰɔɟ	अनियंत्रित व्यक्ति	1
kanunci ka/ɪ ɟɘɽ	नियमों की बहुत बात करने वाला	3
ɘgɪja de ke bɪɟɟe gajɘb	निमंत्रित करना लेकिन स्वागत न करना	1
lɪkʰa pɘɽi	कानूनी दस्तावेजीकरण	2
kauɽi ka tin	बेकार व्यक्ति	1
upɘddɘr kɘrna	समस्या पैदा करना	3
sɘkarna	स्वीकार करना	2

तालिका 5: बहु शब्द भाव

यह सबसे नकारात्मक रूप से प्रभावित मामलों में से एक लगता है। बहु शब्द अभिव्यक्तियों में वे मुहावरे, वाक्यांश और कहावत शामिल हैं जिनकी प्रकृति आम तौर पर स्थिर है। रूपातम्क रूप से कहें तो ये बहुत उत्पादक नहीं हैं और इसीलिए उनके बहुत सारे भिन्न प्रारूप नहीं हैं। इस अध्ययन के लिए हासिल किए गए आंकड़ों में संक्रटग्रस्त तथा लुप्त भाव इस समूह से संबंधित हैं। बोलने वाला यह समुदाय इन अभिव्यक्तियों को अन्य "विहित किस्मों" के शिक्षित लोगों की उपस्थिति में उपयोग करने में शर्म महसूस करता है।

शब्द + प्रत्यय	शब्दावली	वर्ग
ɘkɘl + mɘnd	बुद्धिमान	2
nemɘt + kʰana	अल्मारी	2

तालिका 6 : प्रत्ययों के साथ शब्द

इस सूची का प्रयोजन यह दर्शाना है कि, लुप्त होने की कगार पर खड़े बहुत सारे भाव वास्तव में व्युत्पत्ति के परिणाम हैं। यह देखना काफी दिलचस्प है कि, इनमें से अनेक संस्कृत और फारसी प्रत्ययों के उपयोग से निर्मित हुए हैं। यही प्रत्यय हिंदी-उर्दू में भी उपयोग किए गए है और बहुधा उपयोग किए जाने वाले शब्द इनसे पैदा हुए हैं।

हानि की प्रकृति तथा स्वरूप

भाषा की हानि की मात्रा प्रकृति तथा स्वरूप कुछ भी हो, इसमें कुछ साझा डोर होती हैं जिनमें अभिव्यक्तियों को अनुभव करने तथा स्पष्ट करने के विशिष्ट तरीके की हानि तथा बोलने वाले समुदाय का अलाभ शामिल होता है। कभी-कभार जब ये बोलने वाले यह बात समझते हैं कि, उनका प्रकार कम मूल्यवान है और इसे अनपढ़ या निचले सामाजिक तबके के लोग उपयोग करते हैं तो उस भाषा को उपयोग करने व आगे बढ़ाने का उत्साह समाप्त हो जाता है। जैसा कि, ऑस्टिन तथा सलाबैंक (2011) ने अवलोकन किया कि, अल्पसंख्यक भाषाओं को बोलने वाले अक्सर यह सलाह देते हैं कि, बच्चों को अनुपयोगी संकटग्रस्त भाषा सिखाने की तुलना में प्रमुख राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय भाषा सिखाना अधिक उपयोगी है। उपरोक्त प्रस्तुत छः तालिकाएं हानि के जोखिम का सामना करने वालों के केवल एक छोटे समुच्चय को प्रस्तुत करती हैं। कहने की जरूरत नहीं है कि, वे सभी

शब्द तथा भाव जिनको एक की ग्रेडिंग हासिल है, अंततः शब्दकोश से लुप्त हो जाएंगे। साथ ही, यह भी सत्य है कि, ये मानव व्यवहार, भौगोलिक व सांस्कृतिक परिवेश के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी का प्रतीक होते हैं। इस मोड़ पर संपर्क प्रेरित बदलावों तथा संकटग्रस्त या लुप्तप्राय के बीच के अंतर को बनाए रखने की जरूरत है। अक्सर यह देखा गया है कि, स्थानांतरण व परिवर्तन के भेष में, वास्तव में भाषा की हानि होती है।

हानि के कारण

भाषा की संकटग्रस्तता तथा हानि के पीछे सबसे सहज कारण संपर्क है। भाषाएं तथा भाषा के प्रकार आम तौर पर संकटग्रस्त हो जाते हैं क्योंकि उनके वक्ता ऐसे किसी समूह के संपर्क में होते हैं जिनकी भाषा या प्रकार स्थानीय या व्यापक परिदृष्य में अधिक सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक प्रतिष्ठा प्राप्त होता है या प्राप्त कर रहा होता है (Shannessy, 2011)। वर्तमान मामले में यह हिंदी और उर्दू की साहित्यिक विविधता के साथ इसका सामना व संपर्क है। ओडे व ग्राफ (2006) ने भाषा संकटग्रस्तता की ताकतों को दो समूहों में श्रेणीबद्ध किया है; बाहरी व भीतरी। उनके अनुसार; भाषा संकटग्रस्तता सैनिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक या शैक्षिक अधीनता जैसे बाहरी कारणों से पैदा हो सकती है। यह अपनी भाषा के प्रति सामुदायिक नकारात्मक व्यवहार या समूह की पहचान में सामान्य घटत जैसे आंतरिक कारणों से भी पैदा हो सकती है

(ओडे व ग्राफ, 2006)। हालांकि, जैसा कि, इस आलेख के शीर्षक में संकेत है, इस परिस्थिति के पैदा होने का मुख्य कारक संबंधित बोलने वाले समुदाय का अस्वीकरण (इन शब्दों, वाक्यांशों तथा अभिव्यक्तियों का) है।

दैनिक भाषा उपयोग के स्तर पर मजाक तथा अति-सुधार की दिशा में एक प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। चूंकि समाजिक-आर्थिक तथा सांस्कृतिक कारक सकारात्मक रूप से योगदान नहीं करते हैं, संकटग्रस्त तथा विलुप्त शब्दों व अभिव्यक्तियों का अंतर-पीढ़ी संचरण रुक गया है। जबकि दूसरी तरफ प्रतिस्थापित शब्दों तथा अभिव्यक्तियों ने सामाजिक उत्थान में मूल्यों तथा संभावनाओं को बढ़ाया है। यह देखना दिलचस्प है कि, उन भाषाओं में भी हानि हुई है जिनको प्रभावी व सुरक्षित माना जाता है। यदि वे काफी व्यापक रूप से बोली जाती हैं तथा उनके पास मानक स्वरूप भी है तो गैर-मानक विविधताओं द्वारा होने वाली हानियों पर ध्यान नहीं जाता है। यह इस मामले पर भी लागू है। मगही और हिंदी-उर्दू को संकटग्रस्त नहीं माना जाता है लेकिन उनमें यह हानि काफी तेज गति से हो रही है।

सकारात्मक कारवाई

क्या किया जा सकता है? स्वदेशी शब्दावली की गिरावट की मात्रा तथा गति को दिमाग में रखते हुए, यह काफी स्वाभाविक लगता है कि, दस्तावेजीकरण कार्यों को पहले रखा जाना चाहिए। इन दस्तावेजीकरण प्रयासों से भाषा विज्ञान, भाषा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र तथा अन्य में कई विकासों को संपन्न किया है (ऑस्टिन तथा सलाबैंक 2011)। हालांकि जब तक कि, यह पता कि, पहले से क्या और कितना खो दिया गया है, संरक्षण कार्यक्रम तैयार नहीं किया जा सकता है, समुदाय को प्रारूपों को बनाए रखने के लिए प्रेरित नहीं किया जा सकता है और डिजिटाइजेशन व संग्रहीत करने को शुरु नहीं किया जा सकता है। साथ ही, बोलने वालों को उनकी भाषा के व्यवहार का प्रकाशित दस्तावोज प्रदान करके, प्रारूपों को बनाए रखने के लिए प्रेरित करना भी महत्वपूर्ण है। दस्तावेजीकरण का यह प्रयास, संकटग्रस्त भाषाओं के लिए चिंता द्वारा चलित होता है तथा प्रौद्योगिकी में उन उन्नतियों से सक्षम होता है जिन्होने रिकॉर्डिंग, विश्लेषण तथा ऑडियो व वीडियो आंकड़ों के संग्रहण को इस प्रकार से संभव किया है जैसा कि, कुछ ही समय पहले सोचना भी संभव न था (ऑस्टिन तथा सलाबैंक 2011)। प्रौद्योगिकीय उन्नतियों के माध्यम से उपलब्ध समर्थन को देखते हुए दो महत्वपूर्ण संभावनाएं हैं; (क) जो क्षय हो रहा है उसे पुनः हसिल किया जा सकता है और (ख) जो विलुप्त हो गया है उसे पुनःजीवित किया जा सकता है।

उपसंहार

यह आलेख एक प्रणाली संबंधी चिंता के साथ शुरू हुआ। इसने यह चर्चा की कि, किस तरह से सूक्ष्म दृष्य तथा समग्र भाषा दृष्टिकोण, सभी प्रकार की भाषा हानियों का विश्लेषण प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं। यहां पर चर्चा की गयी भाषाई हानि परिस्थिति के लिए गतिशील दृष्टिकोण तथा एक सूक्ष्म दृष्टि की जरूरत है। पांच तालिकावार वर्णनों के माध्यम से इस आलेख ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि, शब्द और भाव के स्तर पर सतत हानि हो रही है जबकि भाषा के पास बहुसंख्यक तथा प्रमुखता की स्थिति उपलब्ध हो तो। इस आलेख में प्रस्तुत तथा ग्रेड किए गए आंकड़े मौखिक प्रदर्शनों का निश्चित अनुपात प्रस्तुत करते हैं। अंतर-पीढ़ी संचरण के समापन ने उनको असुरक्षित तथा मृत बना दिया है। वे शब्द तथा भाव जो खतरे में हैं या विलुप्त हो गए है वे इस बात के बेहतरीन उदाहरण है कि, किस तरह से उनके भीतर भौगोलिक, मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक जानकारी को समाहित किया गया है। जहां तक इन हानियों के कारण का प्रश्न है, यह आलेख बोलने वाली जनसंख्या द्वारा अस्वीकरण को पहला तथा सामाजिक-आर्थिक कारकों को दूसरा स्थान देता है।

नोट 1: 1-3 की ग्रेडिंग स्केल इस आलेख के लिए ही है; जहां पर 1 शून्य उपयोग (विलुप्त) को, 2 सीमित उपयोग (संकटग्रस्त) को, 3 आम उपयोग (सुरक्षित) भाव को बताता है।
नोट 2: a/i शब्दों द्वारा किए जाने वाले पुरुष महिला लिंग भेद को बताता है
नोट 3: इस आलेख में प्रस्तुत आंकड़े एक बड़े दस्तावेज से निकाले गए हैं तथा उन सभी को प्रदर्शित करना इस आलेख के दायरे से बाहर है। इसलिए, केवल एक प्रतिनिधि नमूना उपयोग किया गया है।

संदर्भ:

- Austin, Peter K. and Julia Sallabank (eds.). 2011. *The Cambridge Handbook of Endangered Languages*. Cambridge & Delhi: Cambridge University Press.
- Brenzinger, Matthias et al. (eds.). 2003. *Language Vitality and Endangerment.* In Ad Hoc Expert Group"s Document on Endangered Languages. Paris: UNESCO
- Chelliah, Shobhana L. and Willem J. de Reuse. 2011. *Handbook of Descriptive Fieldwork*. New York: Springer.
- Dwyner, Arienne M. 2011. Tools and Techniques for Endangered-Language Assessment and Revitalization. In *Vitality and Viability of Minority Languages*. October 23-24, 2009. New York: Trace Foundation Lecture Series Proceedings. Preprint.
- Odé, Cecilia and Tjeerd de Graaf. 2006. *Language Endangerment and Revitalization*.Unpublished paper. University of Leiden. Netherlands.
- Shannessy, Carmel O'. 2011. Language Contact and Change in Endangered Languages. In Austin, Peter K. and Julia Sallabank (eds.).*The Cambridge Handbook of Endangered Languages*. Delhi: Cambridge University Press. Page 78

ISSN 2455-0310

भाषा

1857 और तेलगु नवजागरण

सुधारवादी आंदोलन, अंग्रेज़ी शिक्षा तथा नवीन भाव विचार, मुद्रण कला, उदारतावाद, व्यक्तिवाद तथा मानवतावाद यह आधुनिक युग में आंध्र समाज को प्रभावित करने वाले तथ्य हैं।

डॉ. अन्नपूर्णा सी.
विभागाध्यक्ष
अनुवाद अध्ययन विभाग
म.गां.अं.हिं.वि. वर्धा

सन 1857 का विद्रोह भारतीय इतिहास का गौरवशाली अध्याय है। पहली बार देश के विभिन्न भागों के बीच एक ऐसे शासन के खिलाफ एकता स्थापन हुई थी जो सब का शत्रु था। विद्रोह के दौरान अनेक नेता और योद्धा उभरे जिनकी वीरता ने उन्हें अमर बना दिया। रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे जैसे नेताओं की वीरता आगे की पीढ़ियों के लिए स्वतंत्रता आंदोलन के लिए प्रेरणा तथा देश प्रेम का स्रोत बनी।

सन 1857 का सिपाही विद्रोह आधुनिक भारत के इतिहास की प्रथम महत्वपूर्ण घटना है। यह ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध भारतीयों द्वारा पहली बार संगठित एवं हथियारबंद लड़ाई थी। इसे राज्य की क्रांति कहना उचित होगा। क्रांति का विस्फोट एक सैनिक विद्रोह के रूप में हुआ था। परंतु बाद में राजनीतिकों को हाथ आ गया। सैनिक असंतोष के अतिरिक्त राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक असंतोष भी इसके लिए उत्तरदायी थे जो बहुत दिनों से अंग्रेज़ों के विरूद्ध चल रहे थे। इसको दबाने के लिए अंग्रेज़ तुरंत सफल हो न सके। इस में असैनिक, राजा, प्रजा, अमीर-गरीब, हिंदू-मुसलमान सभी कूद पड़े। फलस्वरूप अंग्रेज़ों की शासन पद्धति तथा उनकी नीति में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया।

1857 क्रांति के बाद भारतवासी अंधकार से प्रकाश में आ गए। इसलिए इस क्रांति को प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा जाता है। इस गदर में सैनिक एवं असैनिक समान भागीदारी थे। इस समय में प्रांत में नवाबों और राजाओं का शासन था।

यहां 1857 क्रांति के पहले आंध्र समाज की परिस्थितियों के बारे में चर्चा करना समीचीन होगा। अंग्रेज़ों के शोषण दमन नीति से आंध्र भी अछूता नहीं रहा। भारत को अंग्रेज़ों ने अपना बाजार बनाया। देश के अन्य प्रांतों की तरह आंध्र भी उनकी नीति का शिकार हुआ। परंतु आंध्र में अपनी नीति को कार्यान्वित करने के लिए अंग्रेज़ों को कुछ समय लगा। क्योंकि उस समय आंध्र में छोटे-छोटे राजा और जमींदार प्रशासन करते थे और अंग्रेज़ों से संघर्ष करते रहे। परंतु बाद में अंग्रेज़ों ने उन्हें धोके से हरा कर समझौता कर लिया। 1838 के बाद ही यह अंग्रेज़ों के शासन में आया था। लगभग उसी समय भारत के अन्य प्रांतों में भी राष्ट्रीय भावना का बीज वपन हुआ। भारत भर में एकता की भावना जागृत हुई। 1833 में आंध्र प्रांत में भयानक अकाल पड़ा। हजारों लोग मारे गए। अंग्रेज़ों की ओर से कोई सहायता नहीं मिली। परंतु सर ऑर्थर काटन के कारण कृष्णा गोदावरी नदियों पर बांध बनाए गए। नहरों का निर्माण किया गया। सिंचाई की सुविधा बढ़ाई गयी।

सरकारी नौकरी का तथा सुधारवादी व सुविधावादी साधनों का मोह दिखा कर अंग्रेज़ों

ने भारतीयों मे फूट डालनी चाही। इसके परिणामस्वरूप रेल की सुविधाएं, सड़कें आदि बनाई गई। सरकार की तरफ से स्कूल-कॉलेज खुलने लगे। 1855 में मद्रास विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। बाद में आंध्र के बड़े-बड़े शहरों में कॉलेजों की स्थापना हुई। इसके कारण उच्च वर्ग और मध्य वर्ग के लोगों को पढ़ने की सुविधा मिली।

आंध्र का बड़ा हिस्सा निजाम, नवाब और दूसरी ओर हैदरअली, टीपू सुलतान के सामंतों के हाथों में था। निजाम, नवाब और टीपू सुलतान की पराजय व समझौते के कारण दक्षिण भारत भी ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार क्षेत्र में आ गया। इस दौरान आंध्र प्रांत का राजनीतिक वातावरण अपने पूर्व युगों से अलग नया रूप धारण करने लगा। अंग्रेज़ों की नीति थी 'फूट डालो और राज्य करो'। इसके कारण आंध्र के छोटे-छोटे सामंत, जमींदार आदि अंग्रेज़ों के समर्थन में ही अपनी सुरक्षा व भलाई देखकर उनके गुलाम बन गए। फलस्वरूप देश भर में अशांति के बादल मंडराने लगे। असंतुष्ट और अधिकारों से वंचित देशीय राजा अपनी मुक्ति का मार्ग ढूंढने लगे।

तत्कालीन समाज में बाल विवाह, छूआछुत, देवदासी प्रथा, दहेज प्रथा, जात-पात, भेद-भाव सती सहगमन आदि कई कुरीतियां व्याप्त थी। अंग्रेज़ों ने दक्षिण में ईसाई धर्म का तीव्र प्रचार करना आरंभ किया। निम्न वर्ग के लोग ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हुए और बड़ी संख्या में धर्म परिवर्तन करने लगे। उच्च वर्ग के लोग भी पद व प्रतिष्ठा प्राप्ति हेतु धर्म परिवर्तन करने लगे। पश्चिमी शिक्षा, पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति और पाश्च्यात्य साहित्य के संपर्क ने भारतीय समाज की दिशा बदल दी। ब्रह्म समाज की स्थापना हुई। उसके द्वारा सहगमन प्रथा के निर्मूलन में सफलता मिली। इसका प्रभाव सभी प्रांतो पर पड़ा। आंध्र में रघुपति वेंकट रत्नम नायुडु के नेतृत्व में ब्रह्म समाज की स्थापना हुई। इस समाज की ओर से सामाजिक दुराचारों के निर्मूलन के लिए कार्य आरंभ किया गया। बाल विवाह का निषेध, विधवा विवाह को प्रोत्साहन, जातपात के भेदभाव को मिटाना, अनाथ शिशुओं का संरक्षण, देवदासी प्रथा का बहिष्कार, वेश्यावृत्ति का विरोध आदि कार्यक्रम सफलतापूर्वक संचालित होने लगे। श्री नायुडु ने अंग्रेज़ी पत्रों में लेख लिखकर और भाषण देकर ब्रह्म समाज को बल दिया। श्री रावबहादुर कंदुकूरि वीरेशलिंगम इन्हीं से प्रभावित थे। उन्होंने इन कार्यक्रमों को न केवल आचरण द्वारा सफल बनाया अपितु साहित्य द्वारा प्रचार भी किया। वीरेशलिंगमजी ने संस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए अनेक प्रयास किए। स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। क्योंकि मध्ययुगीन सामंतवादी नवाबी संस्कृति ने भारतवासियों को अधिक भोगविलासी बना दिया। सारी शक्तियां भोगविलास की सुविधाएं जुटाने में खर्च हो जाती थी। नारी को भी इसी दृष्टि से देखते थे। समाज और परिवार में उसकी कोई खास पहचान नहीं थी। समाज सुधारकों के प्रयास के फलस्वरूप नारी को सामाजिक क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर मिला।

साहित्य के काल विभाजन की दृष्टि से इस काल को 'आधुनिक काल' कहा जाता है। जिस प्रकार राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से सुधारवादी आंदोलन शुरू हुए थे उसी प्रकार साहित्य की दशा में भी परिवर्तन आया। मानसिक गुलामी में दबे जमींदार व सामंतों की प्रशंसा में साहित्य का निर्माण होने लगा। पूर्व युग की तुलना में इस युग में साहित्यिक मूल्यों की दृष्टि से क्षीण साहित्य ही था। सामाजिक सामंतों की पतनावस्था विलासिता, सामाजिक जीवन की निष्क्रियता एवं व्यसनाधीनता इसके लिए उत्तरदायी मानी जाती है। पश्चिमी शिक्षा और सुधारवादी नीतियों ने भारतीय जीवन में नवजागरण का शिलान्यास किया। सामाजिक सांस्कृतिक पुनरुत्थान के प्रयासों के फलस्वरूप चेतना पाकर आम जनता भी राष्ट्रीय आंदोलन में खुलकर भाग लेने लगी। साहित्य में पूरानी परंपराओं को तोड़कर नवचेतन को भर दिया। इस नई चेतना से भरे साहित्य को आधुनिक साहित्य कहना समीचीन है। तेलुगू साहित्य में अनेक नई विधाओं का जन्म हुआ जो पहले नहीं थे। पाश्च्यात्य देशों के संपर्क से वैचारिक आंदोलन शुरू हुआ।

साहित्य ने सामंतवादी, श्रृंगारवादी जंग को छोड़ दिया और जनजीवन के सुख-दुखों का दर्पण बना। गद्य की नयी विधाओं का विकास हुआ। आधुनिक युग में तेलुगू साहित्य प्रधानत: गद्य, पद्य और नाटक तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। गद्य साहित्य के क्षेत्र में परवस्तु चिन्नथ सूरि ने 'बाल व्याकरण' नामक प्रामाणिक तेलुगू व्याकरण प्रस्तुत किया। इसके द्वारा आधुनिक तेलुगू का स्वरूप निर्धारित किया गया। नीतिचंद्रिका और प्रामाणिक शब्द कोश का भी निर्णय किया। इसके बाद तेलुगु गद्य गंगावतरण को सभी दिशाओं में प्रवाहित करने वाले श्री कंदुकुरीवीरेशलिंगम पंतुलु थे। गद्य की सभी विधाओं का बिजारोपण किया और 'गद्य ब्रह्म' नाम से विख्यात हुए। इनके अलावा गिडुगुराममूर्ति पंतुलु ने भी इस दिशा में काम किया। इन्होंने यह अनुभव किया कि, नियमबद्ध साहित्यिक भाषा और साधारण जनता में व्यवहृत लोक भाषा में बहुत अंतर है। इस पर आधारित होते हुए 'व्यावहारिक भाषावाद' नामक आंदोलन की शुरवात की। पाश्च्यात्य प्रभाव के कारण अन्यवाद, काल्पनिकवाद, यथार्थवाद जैसे अनेक वादों का प्रचलन हुआ। नए सिरे से जनजीवन का विश्लेषण और प्रतिबिंब प्रस्तुत करने में सफल हुए। आधुनिक औद्योगीकरण अतिशयता, महानगरीय सभ्यता आदि युद्धों की विभीषिका का फल है। अत: नवीन ज्ञान-विज्ञान प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप उत्पन्न विषय मानवीय स्थितियों के नए दौर को आधुनिकता नाम दे सकते हैं। अत: कहा जा सकता हैं कि, सुधारवादी आंदोलन, अंग्रेज़ी शिक्षा तथा नवीन भाव विचार, मुद्रण कला, उदारतावाद, व्यक्तिवाद तथा मानवतावाद यह आधुनिक युग में आंध्र समाज को प्रभावित करने वाले तथ्य हैं।

ISSN 2455-0310

भाषा

खोरठा भाषा की क्रिया का रूपवैज्ञानिक अध्ययन

(A Morphological Study of verb in Khortha Language)

भाषाविज्ञान जहां एक तरफ भाषा को व्यवहार या संप्रेषण की एक इकाई के रूप में देखता है वही दूसरी तरफ इसे विभिन्न स्तरों पर व्यवहृत एक व्यवस्था के रूप में देखता है। भाषा का अध्ययन उसकी रूप रचना, व्यवहारिक प्रयोग, सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ आदि अनेक दृष्टियों से किया जाता हैं। ध्वनि से प्रोक्ति तक सभी स्तरों पर भाषा का अध्ययन किया जाता हैं। इन सभी स्तरों पर भाषा के प्रकृति के अनुरूप विवेचन की आवश्यकता होती है। कुछ भाषाएं रूप स्तर पर अधिक समृध्द होती है तो कुछ वाक्य के स्तर पर। प्राय: भारतीय भाषाएं रूप और वाक्य दोनों स्तरों पर विशिष्ट हैं। अतः इनका अध्ययन इन स्तरों पर किया जा रहा है।

झारखंड एक बहुप्रजातीय, बहुसांस्कृतिक और बहुभाषिक राज्य है। यहाँ तीन प्रजातियाँ आस्टिक, द्रविड़ और आर्य प्रजाति के लोग हैं। झारखंड क्षेत्र में दो तरह की भाषाएं बोली जाती हैं–

जनजातीय भाषा जिसमें मुंडारी, संथाली, हो एवं कुड़ुख, माल्टो, कोरवा और

क्षेत्रीय भाषा जिसमें खोरठा, कुरमाली, पंचपरगनिया एवं नागपुरिया भाषाएं शामिल हैं।

झारखंड को भारत का छोटा नागपुर कहा जाता है। द्रविड़ परिवार- मुंडारी, संथाली, हो एवं कुड़ुख, माल्टो, कोरवा और आर्य परिवार की भाषाएं खोरठा, कुरमाली, पंचपरगनिया एवं नागपुरिया बोली जाती है। यह उत्तरी छोटनागपुरी प्रमंडल के धनबाद, गिरिडीह, बोकारो, हजारीबाग, चतरा, कोडरमा, रामगढ़, देवघर तथा जामताड़ा जिलों में बोली जाती हैं।

शिल्पा
पी-एच.डी हिंदी(अनुवाद प्रौद्योगिकी)
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

क्रिया

हिंदी में क्रिया पदबंध मुख्य क्रिया तथा सहायक क्रिया के योग से बनता है। क्रिया के दो भेद निम्नलिखित हैं-

क्रिया

1.रचना की दृष्टि से　　　　2.रूप रचना की दृष्टि से

रचना की दृष्टि से क्रिया के दो भेद निम्नलिखित हैं –

1. सकर्मक क्रिया　　　　2.अकर्मक क्रिया

सकर्मक क्रिया - सकर्मक क्रिया –सकर्मक क्रिया उसे कहते है जिसका कर्म हो।

उदा: मोहन आंबा खाइ रहल हइ।

अकर्मक क्रिया - अकर्मक क्रिया उसे कहते हैं जिसका क्रिया के व्यापार और कर्त्ता पर हो।

उदा: उ गा रहल हइ।

रूप रचना के आधार पर क्रिया के चार भेद निम्नलिखित हैं –

सरल क्रिया मिश्र क्रिया संयुक्त क्रिया योगिक क्रिया

सरल क्रिया

इसमें एक मुख्य क्रिया और एक सहायक क्रिया होती हैं। मुख्य क्रिया कोशीय अर्थ देती है, तथा सहायक क्रिया व्याकरणिक अर्थ देती है –उदा : हाम ओकरा चाहो हियइ। इस वाक्य में चाहो मुख्य क्रिया और हियइ- सहायक क्रिया है।

मिश्र क्रिया

मिश्र क्रियाएं दो घटकों के योग से बनती है। पहले घटक को क्रियामूल एवं दूसरे घटक को क्रियाकर कहा जाता है। क्रियामूल के रूप में संज्ञा अथवा विशेषण या क्रियांगी आते हैं। क्रियांगी क्रिया का अंग होता है, इनका स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता। इसमें क्रियांगी (संज्ञा/ विशेषण) +मुख्य क्रिया +सहायक क्रिया।

उदा:

गरमी बढ़ रहल हइ।	गर्मी बढ़ रहा है।
राम रोटी खइलइ।	राम ने रोटी खाई।
राम रोटी खा रहल हइ।	राम रोटी खा रहा है।
राम रोटी खाइलय।	राम ने रोटी खाई।

संयुक्त क्रिया

दो या दो से अधिक क्रियाओं के योग से बनाने वाली क्रियाओं को संयुक्त क्रिया कहते हैं। इसमें पहला अवयव मुख्य क्रिया होता है जो क्रिया धातु के रूप में पाया जाता है जो क्रिया के कोशीय अर्थ को अभिव्यक्त करता है। दूसरा घटक रंजक क्रिया होता है। रंजक क्रिया का प्रयोग अर्थ परिवर्तन के बिना मुख्य क्रिया के रूप में हो सकता है जैसे- ले, लेना, रंजक क्रिया और मुख्य क्रिया दोनों साथ-साथ आते हैं।

उदा:

किशोर काँदों लगलइ।	किशोर रोने लगा।
इहा से जाइ ना पारबे।	यहाँ से जाने न पावेगी।
छउड़न खेइल रहल हइ।	लड़के खेल रहें हैं।

यौगिक क्रिया

जिस क्रिया संरचना में दो कोशीय अर्थ का बोध हो यौगिक क्रिया कहलाती है। इसमें दोनों घटक मुख्य क्रिया का कार्य करते हैं तथा दूसरा घटक के साथ सहायक क्रिया लगी होती है।

उदा: उ बही ले गेलइ।   वह किताब ले गया।

काल के तीन भेद निम्नलिखित हैं-

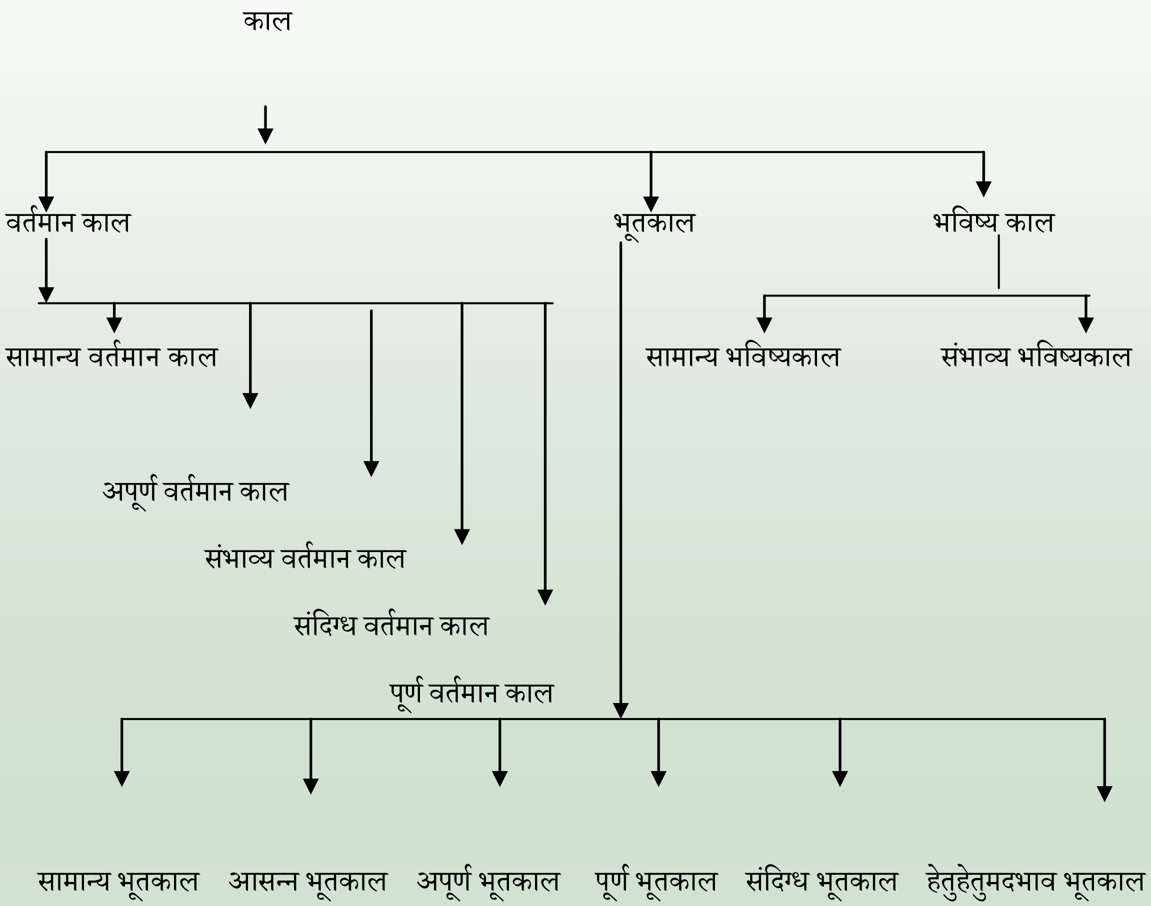

वर्तमान काल

क्रिया के जिस रूप से वर्तमान समय में कार्य के होने का बोध हो उसे वर्तमान काल कहते हैं।

उदा:

उ खाना खाइत हइ/ खा रहल हइ।	वह खाना खा रहा है।
हाम सुरूज के देखो हियइ।	मैं सूरज को देखता हूँ।
हाम पुस्तक पढ़ो हियइ।	मैं पुस्तक पढ़ता हूँ।
उ खाना खाइत हइ/खा रहल हइ।	वह खाना खा रहा है।
रमेश अध्यापक हइ।	रमेश अध्यापक है।
चेंगा गुला गाना गावेत हथिन।	बच्चे गाना गा रहे हैं।
माय खाना बनावेत हथिन।	माँ खाना बना रही है।

सामान्य वर्तमान काल

क्रिया के जिस रूप से उसके वर्तमान काल में सामान्य रूप से होने का बोध हो, उसे सामान्य वर्तमान काल कहते हैं।

उदा:

हाम जा हियइ। मैं जाता हूँ।

हाम जा हियइ। मैं जाती हूँ।

अपूर्ण वर्तमान काल

क्रिया के जिस रूप से यह पता चले कि, क्रिया अभी चल रही है, अर्थात सामाप्त नहीं हुई, उसे अपूर्ण वर्तमान काल कहते हैं।

हाम जाइ रहल हियइ।	मैं जा रहा हूँ।
ओखिन जाइत हथिन।	वे जा रहे हैं।
तू सुइत रहल हीं।	तू सो रहा है।
हाम जाइ रहल हियइ।	मैं जा रहा हूँ।
हाम पइढ़ रहल हियइ।	मैं पढ़ रहा हूँ।
हाम गाइ रहल हियइ।	मैं गा रहा हूँ।
हाम हांस रहल हियइ।	मैं हँस रहा हूँ।

संदिग्ध वर्तमान काल

क्रिया के जिस रूप से कार्य के होने में संदेह का बोध होता है, उसे संदिग्ध वर्तमान कहते हैं।

उदा:

सिनेमा देखो होतथीन।	सिनेमा देखता होगा।
उ जा रहल होतइ।	वह जा रहा होगा।
गीतिका पढ़ रहल होतइ।	गीतिका पढ़ रही होगी।

पूर्ण वर्तमान काल

जिससे वर्तमान काल में कार्य की पूर्ण सिद्धि का बोध होता है, उसे पूर्ण वर्तमान काल कहते हैं।

उदा:

ओकिन आइल हथिन।	वे आएं हैं।
सुशील आइल हइ।	सुशील आया है।
उ गेल हइ।	वह गया है।

संभाव्य वर्तमान काल

इसमें क्रिया के माध्यम से कार्य सम्पन्न होने की संभावना का आभास मिलता है।

उदा:

उ सूत गेइल होतइ।	वह सो गई हो।

उ सुतल होतइ।	वह सोया हो।
उ खेलले होतइ ।	उसने खेला हो।

भूतकाल

क्रिया के जिस रूप से काम के बीते हुए समय में होने का बोध होता है,उसे भूतकाल कहते हैं।

उदा:

माय खाना बना चुकले।	माँ खाना बना चुकी।

सामान्य भूतकाल

जिसमें बीते हुए समय में होने वाली क्रिया का सामान्य रूप हो, वहां सामान्य भूतकाल होता है।

उदा:

हाम इस्कूल गेललइ ।	मैं स्कूल गया ।
उ गेलइ।	वह गया।

आसन्न भूतकाल

क्रिया के जिस रूप से यह जाना जाता है कि, क्रिया भूतकाल में आरंभ होकर अभी अभी समाप्त हुई है, आसन्न भूतकाल कहलाता है।

उदा:

ओखिन सुइतके उठल हथिन।	वे सोकर उठे हैं ।
उ अखन आइल हे।	वह अभी आया है।
उ पढ़के आइल हइ।	वह पढ़कर आया है।

अपूर्ण भूतकाल

क्रिया के जिस रूप से यह पता चले कि, क्रिया भूतकाल में ही हो रही थी, किंतु काम की पूर्णता का पता न चले, उसे अपूर्ण भूतकाल कहते हैं।

उदा:

ओखिन खाइ रहल हलथीन ।	वे खा रहे थे।
उ हांस रहल हलय / हलइ।	वह हंस रहा था।
उ पिय रहल हलइ।	वह पी रहा था।

पूर्ण भूतकाल

क्रिया के जिस रूप से यह पता चले कि, काम भूतकाल में समाप्त हो चुका था, वहां पूर्ण भूतकाल होता है। **उदा:**

सुशील खाना खाइ चुकलइ हलइ। सुशील खाना खा चुका था।

उ गेलय हलइ। वह गया था।

संदिग्ध भूतकाल

बीते हुए समय में जिस क्रिया के होने के बारे में संदेह पाया जाए वहां संदिग्ध भूतकाल होता है।

उदा:

उ आइल होतऽ/ होतइ। वह आया होगा।

उ किताब पढ़ले होतइ। उसने पुस्तक पढ़ी होगी।

हेतुहेतुमदभाव भूतकाल

इसकी दो क्रियाओं में कार्य – कारण संबंध होता है। जहां भूतकाल की एक क्रिया दूसरी क्रिया पर आश्रित होती है, वहां हेतुहेतुमद् भूतकाल होता है। उदा:

उ दावाई पितले ताइ ठीक होजइतले। वह दवा पीता तो स्वास्थ्य हो जाता।

भविष्यतकाल

क्रिया के जिस रूप से आने वाले समय में उसके करने या होने का बोध हो ,उसे भविष्यत काल कहते है। उदा:

चेंगा गुला गीत गइतइ। बच्चे गाना गाएंगे।

सामान्य भविष्यत

आने वाले समय में क्रिया के सामान्य रूप से होने की सूचना का बोध कराने वाले काल को सामान्य भविष्यत काल कहते हैं। उदा:

ओखिन खाना खाइम्हा। वे खाना खाएँगे।

ओखिन माइर जइबथीन। वे मारे जाएंगे।

संभाव्य भविष्यत

जहां आने वाले समय में क्रिया के होने या करने की सम्भावना पाई जाए वहां सामान्य भविष्यत काल होता है।

उदा:

ओखिन बइठहा। वे बैठें।

लागे होतइ बरखा होतइ। शायद वर्षा होगी।

हिंदी भाषा की वर्तमान काल 'या/आ' के स्थान पर खोरठा भाषा में 'इल' का प्रयोग करते हैं।हिंदी भाषा की 'हूँ/ हैं /है' के स्थान पर खोरठा भाषा में 'हियइ/ हिअइ / हइ/ हथिन' का प्रयोग करते हैं। हिंदी भाषा की 'ता/ती/ ते' के स्थान पर खोरठा भाषा में 'ओ का प्रयोग करते हैं । हिंदी भाषा की 'रहा/रही/रहे' के स्थान पर खोरठा भाषा में रहल का प्रयोग करते हैं।हिंदी भाषा की भूतकाल में या/आ के स्थान पर खोरठा भाषा में 'इलइ' का प्रयोग करते हैं।हिंदी भाषा की 'था/थी/थे' के लिए हलइ/हलथिन का प्रयोग करते हैं।हिंदी भाषा की भविष्यत काल में 'होगा/ होगी/ होंगे' के लिए 'तइ, ईंभी' का प्रयोग करते हैं। खोरठा में लिंग के आधार पर क्रिया का रूप नहीं बदलता है। खोरठा भाषा मगही प्रभावित है। 'हियइ /हिअइ / हिएइ' तीनों का प्रयोग होता है। इसे टेबुल के माध्यम से समझ सकते हैं:

पुरूष	लिंग	वचन	हिंदी और खोरठा प्रत्यय / क्रिया रूप	
प्रथम पुरूष सर्वनाम – मैं, (हाम) हम (हमिन/हमरिन)	पुल्लिंग	एकवचन बहुवचन	ता हूँ (हियइ) ते हैं (वो हथिन)	रहा हूँ (रहल हइ) रहे हैं (हियइ/ हथिन)
	स्त्रीलिंग	एकवचन बहुवचन	ती हूँ (हियइ) ती हैं (वो हथिन)	रही हूँ (रहल हइ) रहे हैं (हियइ/ हथिन)
माध्यम पुरूष तू(तु) तुम (तोहर) आप	पुल्लिंग	एकवचन बहुवचन	ता है/ ते हो (वो हीं /हइ) ते हैं (हथिन)	रहे हो (रहल हीं) रहे हैं (रहल हथिन)
	स्त्रीलिंग	एकवचन बहुवचन	ती है / ती हो (वो हइ/हीं) ती हैं (हथिन)	रही हो (रहल हीं) रहे हैं(रहल हथिन)
अन्य पुरूष वे(ऊ), वह(उ)	पुल्लिंग	एकवचन बहुवचन	ता है (हइ) ते हैं (हथिन)	रहा है(हइ) रहे हैं (रहल हथिन)
	स्त्रीलिंग	एकवचन बहुवचन	ती है (हइ) ती हैं(हथिन)	रही है (हइ) रही हैं (रहल हथिन)

भूमंडलीकरण के दौर में मानव समाज प्रगति की ओर अग्रसर है।मानव समाज को आर्थिक रूप से मजबूत तो किया ही है बल्कि सामाजिक स्थिति भी ठीक हुई है।भारत की 3000 साल की प्राचीन संस्कृति की जड़ें विभिन्न सभ्यता अपनी विशिष्ट पहचान बना कर इतिहास के पन्नों में स्थान पा चुकी है। भारतीय प्राचीन सभ्यता की

मजबूती के कारण इसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति,भाषा,खान- पान इत्यादि पर टिकी हुई है ।धीरे-धीरे औधोगिकरण ने भारतीय समाज के आर्थिक आधार को मजबूत प्रदान की लेकिन सांस्कृतिक आधार को धीरे-धीरे नष्टप्राय: कर डाला। भारत को अनेकता में एकता (unity in diversity) का देश माना जाता है,परंतु विभिन्न भाषाएं,सांस्कृतियाँ और बोलियाँ तो आज लुप्त हो रही हैं। क्योंकि कुछ भाषाएं और बोलियां आज भी अपने जीणौद्धार के लिए तरस रही हैं।मानव समाज में इन भाषाओं को बोलने वालों की संख्या भी सर्वाधिक है परंतु उनका अस्तित्व ख़तरे में है।भारतीय समाज का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना है की भारतीय सभ्यता के आधार पर कहे जाने वाले बोलियाँ एवं भाषाएं की रक्षा करना बहुत आवश्यक है । बी.बी.सी.हिंदी(3अप्रैल2012) द्वारा इंटरनेट पर आई एक सामाचार हम सभी का ध्यान इस ओर आकृष्ट करती हूँ की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के बोलने वालों की संख्या कम होने की वजह से वह लुप्तप्राय: होने के कगार पर है ।"नेपाल में कुसुंडा भाषा की एकमात्र वारिस –नेपाल की 75 वर्षीय ग्यानी 'मेइया सेन' के जीवन का सच यह है की वह इस भाषा को बोलने वाली एकमात्र महिला जीवित हैं । इनके नहीं रहने के बाद हमें इस भाषा का ज्ञान नहीं हो पाएगा ।उस वक्त कैसा महसूस होगा ?जब हम सुबह सोकर उठेंगे और हमारे आस-पास कोई ऐसा शख्स न हो जो हमारी भाषा बोले और समझ पाए ।भाषा लुप्तप्राय : न हो उसके लिए अन्य भाषाएं जो लुप्तप्राय: हैं उन्हें लुप्त न होने दिया जाए ।इनके लिए कई संस्थान काम कर रही हैं। अत: किसी भी भाषा को छोटा या बड़ा न मानते हुए उसे समानता की दृष्टि से देखा जाना चाहिए तथा सभी को समान अधिकार मिलना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1.गुरु ,कामताप्रसाद (2009) हिंदी व्याकरण; इलाहाबाद : लोकभारती

2.पाण्डेय,अनिल कुमार(2010)हिंदी संरचना के विविध पक्ष ;नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान।

3.पाण्डेय, पृथ्वीनाथ (2003) मानक हिंदी व्याकरण; इलाहाबाद: जय भारती प्रकाशन ।

4.शर्मा,संतशरण (2008)मानक व्यवहारिक हिंदी व्याकरण तथा भाषा –बोध;मथुरा : अमर प्रकाशन ।

5.पाण्डेय,राम कमल, हिंदी संरचना विश्लेषणात्मक अध्ययन; मैसूर: पदमा इंटरप्राइजेज।

6.हिंदी व्याकरण तथा रचना- जीवन बुक्स इंटरनेशनल प्रा. लिमिटेड ।

7.अग्रवाल,मीनाक्षी ,अभिनव हिंदी व्याकरण; नई दिल्ली: भूमिका प्रकाशन।

8.ओहदार, बी ,एन (2007) खोरठा भाषा एवं साहित्य (उदभव एवं विकास); रामगडा : खोरठा भाषा साहित्य अकादमी ।

9.ओहदार, बी ,एन (2007) खोरठा निबंध; रांची : जनजातीय भाषा अकादमी बिहार सरकार।

10.झा , ए .के (2010) खोरठा साहित्य सदानिक बेयाकरण : रांची ; झारखण्ड झरोखा ।

11.बेशी, लाल बंशी (1998) खोरठा दर्पण: बोकारो इस्पात नगर; खोरठा साहित्य-संस्कृति परिषद ।

12.खोरठा भाषा साहित्य एवं व्याकरण, सफ़ाज़ प्रकाशन : रांची।

13.झारखण्ड भाषाओँ की एकमात्र प्रतिनिधि पत्रिका- झारखण्ड भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा(2011)।

ISSN 2455-0310

भाषा

आदिवासी भाषा का विकास एवं जीवन-दर्शन

मनोज कुमार साव
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग,
रांची विश्वविद्यालय,रांची,
झारखंड
Dr.mksaw@gmail.com

प्रस्तावना

वैश्वीकरण के इस दौर में यह संभावना जतायी जा रही है कि, आने वाले वर्षों में आदिवासी भाषाओं एवं आदिवासीयों की पहचान मिट जाएगी। क्योंकि इस दौर में एक ऐसा वातावरण तैयार हो रहा है जहां वैश्विक बाजार के मांग के अनुसार भाषाएं निर्धारित की जाएगी। अतः सभी आदिवासी समुदाय इस परिवर्तन के भय से सहमे हुए हैं। आदिवासी भाषाओं एवं आदिवासियों की पहचान को बचाने के लिए आदिवासी समाज संघर्षरत है। अतः मैं तो यह कहना चाहूंगा कि, वैश्वीक दौड़ में अवश्य दौड़ा जाय परंतु अपनी भाषा साहित्य को बचाते हुए। हमारा बुजुर्ग वर्ग अभी भी अशिक्षित है। अतः उनके लिए तो हम अपनी मूल भाषा को आदर दे ही सकते हैं। कारण अपनी पहचान तो अपनी भाषा साहित्य ही है। अपनी भाषा को मिटने से बचाना अपना सबसे बड़ा कर्तव्य है। इसी बिंदु पर यह आलेख केंद्रित है।

इस दौर में एक ऐसा वातावरण तैयार हो रहा है जहां वैश्विक बाजार के मांग के अनुसार भाषाएं निर्धारित की जाएगी। अपनी भाषा को मिटने से बचाना अपना सबसे बड़ा कर्तव्य है। इसी बिंदु पर यह आलेख केंद्रित है।

तथ्य विश्लेषण

"आदिवासी भाषा तथा साहित्य का विकास" से संबंधित चर्चाओं से पहले 'आदिवासी' शब्द को समझते हैं। 'आदिवासी' शब्द कभी-कभी हमें भ्रमित करता हैं। साधारणत: इसके दो शाब्दिक अर्थ निकलते हैं, प्रथम- जो किसी प्रदेश में आदि समय से निवास करता आ रहा है; द्वितीय- उस विशेष जाति वर्ग के लोग जिन्हें हम जनजाति कहते हैं। "स्थानीय आदिम समूहों के किसी भी संग्रह को जो एक सामान्य क्षेत्र में रहता हो, एक सामान्य भाषा बोलता हो और एक सामान्य संस्कृति का अनुशरण करता हो एक जनजाति कहते हैं।" "जनजाति एक ही सांस्कृतिक श्रृंखला का मानव समूह है जो साधारणतः एक ही भू-खंड पर रहता है; एक भाषा-भाषी है तथा एक ही प्रकार की परंपराओं एवं संस्थाओं का पालन करता है और एक ही सरकार के प्रति उत्तरदायी होता है।" अतः आदिवासी या जनजाति एक ही शब्द के दो रूप हैं। शायद इसीलिए जून 2002 में संविधान में ''जनजाति'' शब्द के बदले ''आदिवासी'' शब्द डालने का प्रस्ताव पारित हुआ था।

आदिकाल से भारत अनेक प्रजातियों का देश रहा है। इसके विभिन्न भूभागों में निवास करने वाले मानव-समुदाय, सांस्कृतिक लक्षणों तथा आर्थिक विकास के दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न रहे हैं। यहां अभी भी अनेक समुदाय ऐसे हैं जो आदिम अवस्था में है। इसलिए इन्हें आदिवासी कहा जाता है। ये प्रायः सभ्य समाज से कोसों दूर जंगली, पहाड़ी और बीहड़ जंगली क्षेत्रों में रहते हैं और हर दिशा में अत्यंत पिछड़े हैं। इन दुर्गम और पृथक क्षेत्रों में निवास करने वाले मानव-समुदाय सभ्यता को विकसित लोगों ने आदिवासी, जनजाति, आदिमजाति, वन्य जाति, वनवासी आदि नामों से संबोधित किया है। भारतीय संविधान में ऐसे लोगों को अनुसूचित

जनजातियां कहा गया है। इंडोनेशिया में इन्हें 'भूमिपुत्र' अफ्रीका तथा अमेरिका में इन्हें 'प्रीमिटिव' और औस्ट्रेलिया में 'अनक्षर जनजाति' कहा जाता है।

लुप्त होती आदिवासी भाषा

सबसे प्राचीन इतिहास जनजातियों की ही है जिनकी अपनी विशिष्ट भाषा संस्कृति, साहित्य, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था सुनिश्चित थी। अब तक इन पर जितने भी शोध किए गए हैं उनका अध्ययन करने पर एक बात स्पष्ट रूप से समझ में आती है कि, इनकी अगर कोई स्पष्ट पहचान है तो वह है इनकी भाषा और इनका साहित्य। परंतु सच तो यह है कि, समय के साथ-साथ इनकी भाषा और साहित्य विनाश के कगार पर आ गए हैं। भाषा वैज्ञानिकों का अनुमान है कि, आनेवाले सौ सालों के अंतर्गत इनकी अधिकतर भाषाएं अपना अस्तित्व खो देंगी। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सांस्कृतिक परिषद ने एक सर्वेक्षण के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि, इस शताब्दी के अंत तक 6300 भाषाएं हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगी। शायद इसीलिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने भाषायी विविधता के संरक्षण हेतु समस्त आदिवासी भाषाओं को बचाने के क्रम में सन् 2008 को अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा वर्ष घोषित किया है।

भाषा से ही साहित्य की कल्पना की जाती है। अगर भाषा की नहीं रही तो साहित्य सृजन कैसे हो पाएगा? हालांकि भाषा तथा साहित्यिक विकास के लिए वर्तमान में अनेक संस्थाएं अपना महत्वपूर्ण दायित्व निभा रहे हैं जिनमें प्रमुख हैं –

(1) संयुक्त राष्ट्र संघ की आदिवासी व देशज समुदायों की स्थायी समिति (परमनेंट फोरम ऑफ इंडिजीनस पीपल, यू.एन.)

(2) आदिवासी दलित महिलाओं एवं अल्पसंख्यक विकास संस्थाएं

(3) इंडिया कमफेडरेशन ऑफ इंडिजीनियस एंड ट्राइबल पीपल (आई.सी. आई.टी.पी.)

(4) अखिल भारतीय आदिवासी साहित्यिक मंच (ऑल इंडिया ट्रइबल लिटररी फॉम) आदि।

प्रमुख आदिवासी सम्मेलन

आदिवासी भाषा-साहित्य को बचाने और इनके विकास को लेकर झारखंड रांची का एक स्थानीय समाचार पत्र प्रभात खबर में एक समाचार आया था जिसका सार यह था- ''पहला जून दो हजार आठ (01.06.2008) में रमणिका फाउंडेशन के द्वारा साहित्य अकादमी के सहयोग से पहला सामूहिक आदिवासी सम्मेलन किया गया था जिसमें जनजातियों की भाषा और साहित्य के वर्चस्व की चर्चा की गई थी, साथ ही आदिवासी लेखकों के लिए अलग से मंच बनाने की योजना रखी गई थी। इसमें एक और अहम फैसला लिया गया था जिसमें कहा गया था कि, संविधान में 'जनजाति' शब्द के बदले 'आदिवासी' शब्द का व्यवहार किया जाए। पुनः 2 जून 2002 को रमणिका फाउंडेशन के कार्यालय में डॉ. रामदयाय मुंडा के नेतृत्व में ''अखिल भारतीय आदिवासी साहित्यिक मंच'' का गठन किया गया था जिसमें आदिवासी साहित्यकारों को मंच देकर एक मंच में जोड़ने को सुनिश्चित किया गया था। यह वह सभा थी जिसमें ग्यारह सूत्रीय एजेंडा डाला गया था जो आदिवासी पहचान, जमीन, बेदखली, जंगल-प्रदेश, शास्त्रीय अवमाननाएं, विस्थापन, पलायन, मातृभाषा में पढ़ाई, इतिहास, अनुवाद, आदिम जनजातियों का संरक्षण, पोषण एवं विकास, घुमंतु एवं विमुक्त जनजातियों को आरक्षण की सुविधा तथा बाजारबाद के मुद्दों को आदिवासी साहित्यकारों का मुद्दा बनाकर लेखन करने की प्रेरणा देने का निश्चय किया गया था ताकि आदिवासी लेखक एवं साहित्यकार लोग देश के नीति निर्धारण एवं निर्माण में अपने लेखन से एक अहम एवं निर्णायक भूमिका अदा कर सके।

आदिवासियों पर नगरीकरण का प्रभाव

अब आदिवासियों के जीवन पर वैश्विकरण के प्रभाव से नगरीकरण का असर देखा जा रहा है। वे स्वयं अपनी भाषा-साहित्य संस्कृति को उपेक्षित कर रहे हैं और उनसे नाक-भौं सिकोड़ रहे हैं। "भारतीय जनजाति के लोग भी भारत के ही नागरिक हैं। इसलिए उन्हें किसी भी हालत में अब अलग रखना संभव नहीं है। इन जनजातियों को जिन्हें असभ्य अर्धसभ्य या जंगली कहा जाता था, सभ्य समाजों के साथ संपर्क एवं मेल-जोल निरंतर बढ़ता जा रहा है। जनजातियों एवं सभ्य समुदायों की संस्कृति पूर्णतया अलग है तथा सभ्य समुदायों के संस्कृति का दबाव अर्ध सभ्य या जंगली लोगों पर तीव्र रूप से पड़ रहा है। सभ्य समाज की चमक-दमक, श्रृंगार के साधन, आधुनिक वस्त्र, शिक्षा-दीक्षा आदि का प्रभाव निरंतर जनजातियों को अपनी ओर आकर्षिक कर रही है।''

भारत में अंग्रजी को पछाड़कर हिंदी जिस तरह से बाजार की भाषा बनती जा रही है उससे आदिवासी भाषाओं के खत्म होने का संकट पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। आगे वह लिखती हैं यह अफसोसनाक है कि, भाषा ग्लोबलाइजेशन के इस दौर में बाजार के पहलू में बैठी राजनीतिक व्यवस्था की दया-दृष्टि पर निर्भर हो गयी है। दुनिया को एक छोटे से गांव में बदलने की योजना पूंजी और साम्राज्यवाद ने आर्थिक मंदी की मजबूरी में बनायी है। जाहिर है कि, जब एक ही गांव होगा तो भाषा भी एक ही होगी। इसलिए विश्व पूंजी बाजार, दुनिया की सभी भाषाओं को लील जाने की तैयारी में है। पहले निशाने पर आदिवासी भाषाएं हैं क्योकि आदिवासी इलाकों में ही धरती की विशाल धन-संपदा, खनिज, जमीन, पानी और अन्य दूसरे संसाधनों का भंडारण या तो सुरक्षित है या अभी भी बचा हुआ है। इसे आसानी से लूटने या हड़पने के लिए जरूरी है उन्हें पूंजीवादी व्यवस्था का दलाल बना देना या फिर उनकी भाषा-संस्कृति को मिटा देना जिसमें कि, संघर्ष की चेतना जीवित है। इसलिए आदिवासी भाषाओं को खत्म कर डालने के लिए बाजार विभिन्न देशों की बड़ी-बड़ी भाषाओं को अपना हथियार बना रहा है जैसे भारत में हिंदी को।''

आदिवासी जीवन-दर्शन

वे आदिवासी जो अपने सहज स्वभाव, भोले-भाले अपनी कला और संस्कृति में मस्त रहने वाले जिनकी अपनी भूमि-जंगल जहां वे आदि समय से विचरण करते रहे हैं, आज उन्हीं से दूर होते जा रहे हैं। बाहरी दिकु लोग आकर उनकी अस्मिता पर हमला बोल दिए हैं और वे मासूम निःस्वार्थी अपने ही जमीन पर मोहताज दिखते हैं। आदिवासियों के संबंध में श्री विद्याभूषण जी लिखते हैं "आदिवासी मानव विज्ञान का शब्द नहीं है, लोक प्रचलन में आने वाला शब्द है। आदिवासी यानी मूल वासी, वनवासी, गिरिजन, आदिम जन, जंगल-पहाड़ में रहने वाला आधुनिक सभ्यता से अलग-थलग रहा मानव समुदाय। ऐसे अनेक समुदायों के लिए प्रयुक्त होने वाला एक शब्द है 'आदिवासी'। इससे जनजातीय समूहों का द्योतन होता है जिनके अनेक समुदाय हैं।"

शायद यही कारण है कि, जून 2002 में संविधान में 'जनजाति शब्द के बदले 'आदिवासी' शब्द डालने का प्रस्ताव पारित हुआ था। ये वे समूह हैं जिनकी अपनी संस्कृति अपना लोक साहित्य अपनी लोक-कला है जो इनको इनकी अलग पहचान दिलाती है। इनकी स्वयं की सामाजिक, आर्थिक व्यवस्थाएं हैं तथा विभिन्न वैवाहिक, पारिचारिक प्रथाओं का अपना एक अलग महत्व है। ये समुदाय में रहते हुए अनेकों प्रकार के जादू, पूजा, टोटका इत्यादि पर विश्वास रखते हैं और इनका इतिहास सबसे प्राचीन है। लोक साहित्य इनकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति है जो मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी इनके गले की कंठ का हार बना हुआ है। डॉ. उमेश कुमार वर्मा के विचार से "जनजातीय संस्कृति की अपनी एक विशिष्ट पहचान है जिसमें कई पीढ़ीओं के जीवन-यापन के अनुभव छिपे हैं।''स्पष्ट है कि, जिन भूमिपुत्रों के पास उनका अपना सब कुछ है जिनका अनुशरण पूरी दूनिया करती है, वे आज अपने बारे में सोचने को मजबूर हैं और उन्हें अपनी जमीन, अपना जंगल, अपना जल ढूंढना पड़ रहा है। अपने ही घर में वे पराये हो गए हैं। अतः स्वाभाविक है कि, इनके अंदर छिपी चिंगारी अग्नि का रूप कभी भी ले सकती हैं।

संदर्भ-ग्रंथ

1. चंद्रकांत वर्मा, झारखण्ड के आदिवासी, के. के. पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 2013, पृ. सं. 02

2. डा0 अम्बिका स्वाँसी, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, अप्रकाशित, शोध आलेख, पृ. सं. 01

3. चंद्रकांत वर्मा, झारखण्ड के आदिवासी, के. के. पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, पृ.सं. 01

4. वंदना टेटे, झारखण्डी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा, जून-अगस्त-2008, प्रकाशक- स्वामी एवं संपादक वंदना टेटे द्वारा रोज केरकट्टा, राँची, झारखण्ड़, पृ. सं. 72

5. स्थानीय दैनिक समाचार पत्र ‘प्रभात खबर’ 4 नवम्बर 2011 अंक-माय-माटी, पृ. सं. 09

6. डा0 अम्बिका स्वाँसी, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, अप्रकाशित, शोध आलेख, पृ. सं. 02

7. चंद्रकांत वर्मा, झारखण्ड के आदिवासी, के. के. पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 2013, पृ. सं. 29

8. वंदना टेटे, झारखण्डी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा, जून-अगस्त-2008, प्रकाषक- स्वामी एवं संपादक वंदना टेटे द्वारा रोज केरकट्टा, झारखण्ड़ प्रेस, राँची, पृ. सं. 72-73

9. विद्याभूषण, झारखण्ड समाज संस्कृति और विकास, प्रकाशक संस्थान, नई दिल्ली, पृ.सं. 35 य पराग किशोर सिंह, झारखण्ड़ी भाषा साहित्य संस्कृति “अखड़ा“, मार्च-मई 2015 (त्रैमासिक) पत्रिका, प्रकाशक- स्वामी एवं संपादक वंदना टेटे द्वारा रोज

10. उमेश कुमार वर्मा, झारखंड का जनजातीय समाज, सुबोध ग्रंथमाला, रांची, पृ.सं. 84 पराग किशोर सिंह, झारखण्ड़ी भाषा साहित्य संस्कृति “अखड़ा“, मार्च-मई 2015 (त्रैमासिक) पत्रिका, प्रकाशक- स्वामी एवं संपादक वंदना टेटे द्वारा रोज केरकट्टा, झारखण्ड़ प्रेस, राँची, पृ. सं. 54

11. पराग किशोर सिंह, झारखण्ड़ी भाषा साहित्य संस्कृति “अखड़ा“, मार्च-मई 2015 (त्रैमासिक) पत्रिका, प्रकाशक- स्वामी एवं संपादक वंदना टेटे द्वारा रोज

ISSN 2455-0310

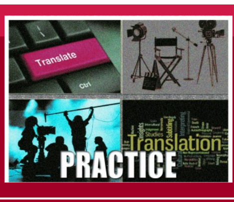

अभ्यास

The Rule of Thirds द रुल ऑफ़ थर्ड्स

इस बार अभ्यास स्तम्भ के अंतर्गत हम द रुल ऑफ़ थर्ड्स के बारें में चर्चा कर रहे हैं ।

संपादक

द रुल ऑफ़ थर्ड्स शायद फोटोग्राफिक संरचना का सबसे ज्यादा प्रचलित सिद्धांत है। द रुल ऑफ़ थर्ड्स फोटोग्राफी की कक्षाओं में पढ़ाये जाने वाले प्रमुख सिद्धांतों में से एक है और अगर वास्तव में देखा जाये तो यह संतुलित और रोचक शॉट्स का आधार है।

हमेशा यह कहा जाता है कि, नियम तोड़ने के लिए बनाये जाते हैं। अतः इस नियम को नजरअंदाज करने का ये कतई मतलब नहीं है कि, आपकी इमेजेस अनिवार्य रूप से असंतुलित या रोचक नहीं होगी। लेकिन किसी भी नियम को तोड़ने से पहले उसे अच्छे तरीके से जान लेना, समझ लेना आवश्यक है। इससे ये सुनिश्चित कर पाएंगे कि, नियम तोड़ना ज्यादा प्रभावशाली है।

द रुल ऑफ़ थर्ड्स है क्या ?

द रुल ऑफ़ थर्ड्स के पीछे जो मुख्य सिद्धांत है वो है किसी इमेज को होरिजोंटली और वर्टिकली थर्ड्स में ब्रेक करने की काल्पना कीजिये, अब आपके पास 9 भाग हैं। इस प्रकार-

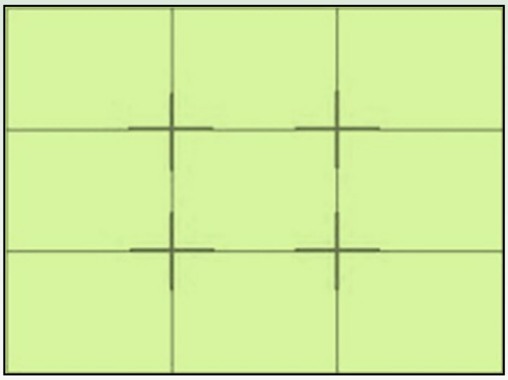

आप जब कोई इमेज ले रहे हैं उस वक्त आपको ये व्यूफाईन्डर द्वारा या एलसीडी डिस्प्ले द्वारा (जिसका भी उपयोग आप शॉट को फ्रेम करने में कर रहें हो) अपने मस्तिष्क में करना होगा। इस ग्रिड को इमैजिन करते हुए द रुल ऑफ़ थर्ड्स अब इमेज के चार महत्वपूर्ण भाग को दर्शाता है। यह इमेज

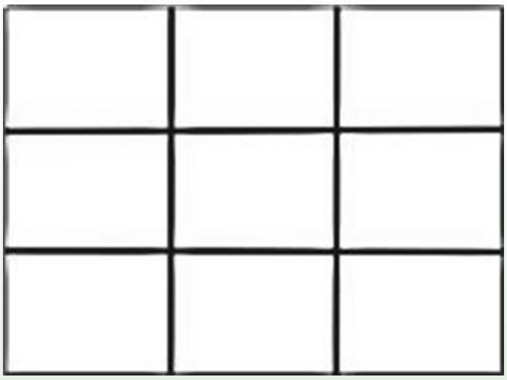

को फ्रेम करते वक्त पॉइंट्स ऑफ़ इंटरेस्ट को प्लेस करने का स्थान है। केवल चार पॉइंट्स ही नहीं बल्कि यह चार लाइंस भी उपलब्ध कराता है जो इमेज के एलिमेंट्स के लिए उपयोगी पोजीशंस हैं।

सिद्धांत यह है कि, यदि आप पॉइंट्स ऑफ़ इंटरेस्ट को इंटरसेक्शंस के बीच या फिर लाइंस के साथ रखते हैं तो आपकी फोटो ज्यादा संतुलित हो जाती है और दर्शक इमेज से अच्छी तरह इन्ट्रेक्ट होने में सक्षम होंगे।

अध्ययन से ये पता चला है कि, सामान्यतः किसी इमेज को देखते वक्त दर्शकों की आँखें शॉट के सेंटर की अपेक्षा प्राकृतिक रूप से इन इंटरसेक्शन्स में से किसी एक पर जाती हैं। रूल्स ऑफ़ थर्ड्स इमेज देखने के प्राकृतिक तरीके से जुड़ा है।

अब कुछ उदाहरण :

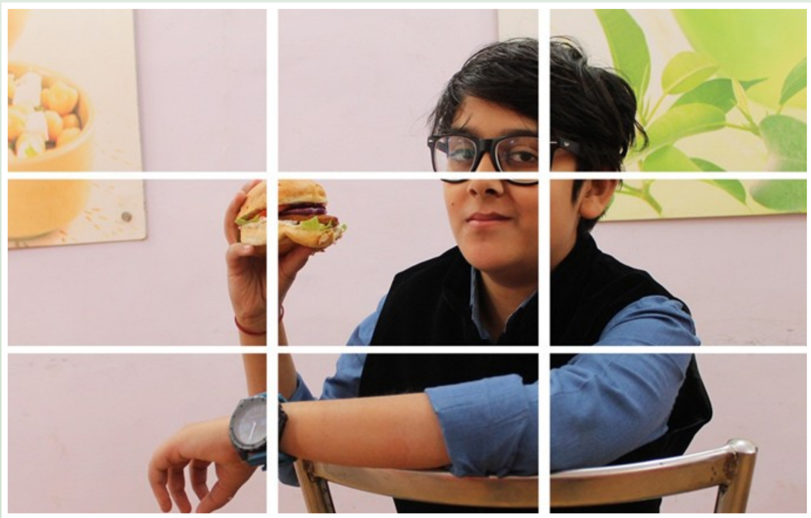

उपरोक्त इमेज में मैंने उद्देश्यपूर्वक सब्जेक्ट के सिर को एक इंटरसेक्टिंग पॉइंट पर प्लेस किया है। विशेष रूप से उसकी आँखों को। आँखें किसी भी पोर्ट्रेट के लिए प्राकृतिक पॉइंट ऑफ़ फोकस होती हैं।

निम्न शॉट में हमने सब्जेक्ट को एक पूरी लाइन में प्लेस किया है जिससे वो ऑफ़ सेंटर लग रही हैं और इस कारण एक अतिरिक्त पॉइंट ऑफ़ इंटरेस्ट का निर्माण कर रही हैं।

ठीक इसी प्रकार लैंडस्केप शॉट्स के लिए हॉरिजॉन्स को किसी एक हॉरिजॉन्टल लाइन्स में पोजीशन करना एक बढियां तरीका है।

द रुल ऑफ़ थर्ड्स का प्रयोग ज्यादातर फोटोग्राफरों के फोटोग्राफ्स में प्राकृतिक रूप से आ जाता है लेकिन नये लोगों को इसे अपनी प्रकृति में लाने के लिए थोड़े अभ्यास की जरुरत पड़ती है।
द रुल ऑफ़ थर्ड्स के प्रयोग को सीखने (और फिर उसे ब्रेक करने) के लिए सबसे महत्वपूर्ण सवाल जो आपको खुद से करने हैं वो हैं-

- **शॉट में पॉइंट ऑफ़ इंटरेस्ट क्या क्या हैं?**
- **हम उन्हें आशयपूर्वक कहाँ प्लेस करने जा रहे हैं?**

एक बार फिर याद रखिये कि, रुल को तोड़ने का परिणाम कई बार जबरदस्त शॉट के रूप में सामने आता है।इसलिए एक बार इसका अभ्यास हो जाने के बाद इसके साथ आप नए प्रयोग कर सकते हैं और कुछ नया खोज सकते हैं।

अंत में – द रुल ऑफ़ थर्ड्स को आप बाद में अपनी इमेज को एडिट करते वक्त अपने दिमाग में रखें। वर्तमान में इमेज को क्रॉप करने और फ्रेमिंग के लिए कई अच्छे पोस्ट प्रोडक्शन टूल्स बाजार में आ गए हैं जिससे वे आसानी से रूल्स में फिट हो जातें हैं।

तो अगले अंक तक आप अपने पुराने फोटोग्राफ्स के साथ इस रुल का प्रयोग करते रहिये। अगले अंक में हम एक नए अभ्यास के साथ हाज़िर होंगे। तब तक क्लिक करते रहिये।

www.transframe.in